महर्षि गार्ग्य प्रसिद्ध कणाद दृष्ट

वैशेषिक-दर्शन

(पुनर्व्यवस्थित सूत्रपाठ अनुवाद सहित)
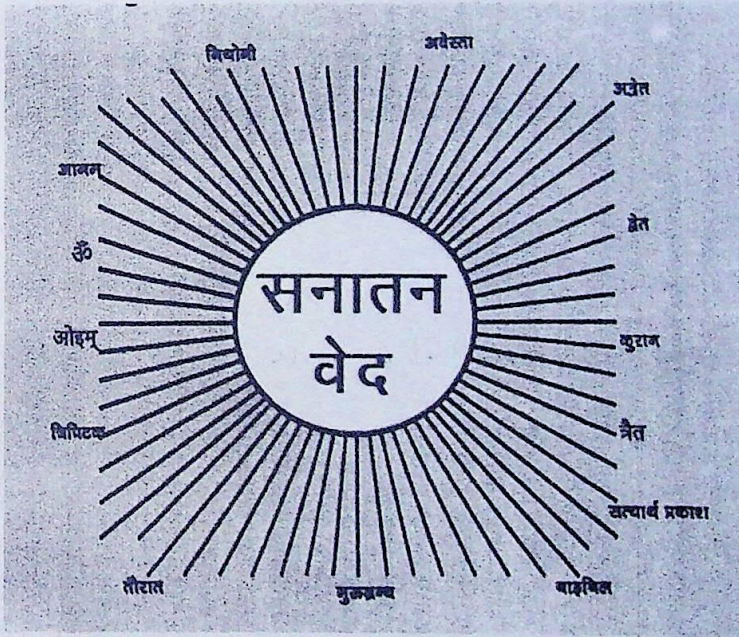
प्रस्तुतकर्ता—

विधिदर्शन, विज्ञानदर्शन एवं वैदिकदर्शन के जिज्ञासु—

-पण्डित शिवानन्द शर्मा (एडवोकेट, मेरठ)
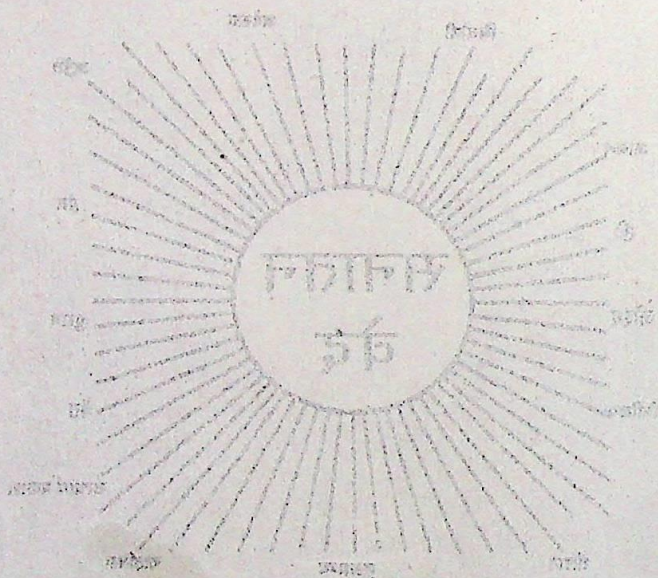
मो0 9359696961

समर्पण

श्रद्धेय शिक्षक, विद्वान विद्यार्थी एवं शोधार्थी जिज्ञासुओं को ससम्मान समर्पित

--पण्डित शिवानन्द शर्मा,
(एडवोकेट, मेरठ)
मो0 9359696961

0 0 0 0 0 0

अधिवेशन सभापति प्रो0 श्याम नारायण चौधरी जी, अध्यक्ष प्रो0 वरुण साहनी जी, उपकुलपति जम्मू विश्वविद्यालय, मुख्य अतिथि प्रो0 वाचस्पति उपाध्याय जी, उपकुलपति लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली, संस्कृत साहित्य में ज्ञानपीठ पुरस्कार से अलंकृत डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री जी, परिषद के अध्यक्ष प्रो0 एस0पी0 दुबे, महामंत्री प्रो0 अम्बिका दत्त शर्मा, जम्मू विश्वविद्यालय के डीन कार्यकारी उपकुलपति बी0पी0एस0 सहगल जी, प्रो0 रामबहादुर शुक्ल जी, प्रो0 मणिका जलाली ज़ी, प्रो0 शारदा गुप्ता जी, प्रो0 ज़ागीर सिंह जी, प्रो0 पुरुषोत्तम शर्मा जी, प्रो0 केदारनाथ शर्मा जी, डा0 सुषमा देवी जी, प्रो0 वेदकुमार घई जी, डा0 दीनानाथ सिंह जी, प्रो0 जटा शंकर जी,

प्रो0 कालीचरण पाण्डेय जी, प्रो0 बी0एन0 ओझा जी, प्रो0 भारतभूषण मिश्र जी केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ आदि उपस्थित तथा अनुपस्थित सम्मानित परिषद सदस्य एवं ब्राह्मण रूप विद्वानों को मैं प्रणाम करता हूं। मेरे कारणरूप पूज्य माता-पिता एवं समस्त के माता-पिता एवं कारणों के कारण विशेष रूप को प्रणाम करता हूं।

यद्यपि आज आपका सानिध्य मेरे लिये बड़े गौरव की बात है, परन्तु आपकी विद्वता के सम्मुख होकर तो एक विशेष संकोच एवं भय से बेहोशी भी आने लगी है, क्योंकि मैं न तो अध्यापक हूं, न विद्यार्थी हूं। मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि मेरा सम्बन्ध किसी विद्यालय तथा शिक्षक से नहीं रहा है, अपितु संस्कृत तथा दर्शन आदि विषय से निरन्तर सम्बन्ध का अभाव बताना है, अन्यथा दून एकेडेमी का छात्र रहा हूँ, तो सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय बनारस का भी छात्र रहा हूँ अर्थात् मुझमें जो ज्ञान दिखाई देता है, वह मेरा अपना नहीं है, अपितु विद्या के मन्दिरों में प्रतिष्ठित सदृश विद्वानों से प्राप्त हुआ है। परम पूजनीय ब्राह्मणरूप विद्वानों की कृपा से ही प्राप्त हुआ है। जो मुझे प्राप्त हुआ है, उसको ही वैशेषिक शास्त्र के रूप में समर्पित करने आया हूँ, क्योंकि उसका उचित उपयोग करने की क्षमता केवल और केवल आपमें ही है और आपका ही अधिकार है। मैं तो केवल एक भूखा-प्यासा जिज्ञासु मात्र हूँ और तृप्ति भी आपसे ही होगी। केवल मैं ही नहीं अपितु विश्व के साढ़े छः अरब मनुष्य समुदाय भी प्यासा है, उसकी भी तृप्ति आपसे ही होगी।

प्राचीन काल से ही ब्राह्मणरूप विद्वानों के द्वारा ज्ञान की लगातार वर्षा होती रही है, परन्तु अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार ही अलग अलग मात्रा में ग्रहण किया गया है। अर्थात् यह नहीं माना जा सकता कि जो कुछ मैंने आपसे ग्रहण किया है उसके अतिरिक्त ज्ञान आपके पास नहीं है। इसलिए मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि मुझे ग्रहण तो हुआ है, परन्तु अपर्याप्त है। यद्यपि मैं विद्वानों से यह निरन्तर सुनता रहा हूँ कि सकारात्मक बनो, आशावादी बनो, फिर भी मैं नकारात्मक और निराशावादी ही बन गया, क्योंकि मैंने इसको ही सुख का कारण मान लिया। मैं यह भी सुनता रहा हूं कि स्वाभिमानी बनो, अपने सम्मान की धन से भी अधिक रक्षा करो, फिर भी मेरा सम्मान मुझसे कोसों दूर रहा है और दूसरे के अपमान से ही सदैव आहत होता रहा हूँ। अर्थात् ऐसे

सम्मान की कभी कल्पना भी नहीं हुई, जिससे दूसरे का अपमान हो। यद्यपि दोष होते हुए भी ऐसा मेरे द्वारा ग्रहण कर लिया गया है, फिर भी इसमें मुझ पर कृपा करने वाले ब्राह्मण रूप विद्वानों का कोई दोष नहीं है, क्योंकि आपके द्वारा तो कृपा की वर्षा निरन्तर की गई। मेरे द्वारा ही ऐसा दोषरूप का ग्रहण कर लिया गया, परन्तु यह भी एक सच है कि ऐसे दोषों के कारण ही मैं आज आपके सामने प्रस्तुत हुआ हूँ।

वैशेषिक शास्त्र संस्कृत भाषा में उपलब्ध होता है। अनेक विद्वानों के द्वारा मुझे बताया गया कि प्राचीन शास्त्र से छेड़छाड़ अपराध है, परन्तु कुछ विद्वानों के द्वारा मुझे परिवर्तन के लिये भी प्रेरणारूप आज्ञा प्रदान की गई। उनमें से दो ब्राह्मणस्वरूप विद्वान यहां भी उपस्थित होंगे। मैं उनके सम्मान को सुरक्षित रखते हुए और उनसे क्षमा मांगते हुए उनका नाम स्पष्ट करना चाहता हूं-- डा0 रजनीश शुक्ल तथा डा0 आनन्द मिश्र। परन्तु उनके द्वारा यह चेतावनी भी दी गई थी कि परिवर्तन का कारण देना आवश्यक है। इसीलिए खोज यात्रा प्रारम्भ हो गयी। यद्यपि फोन पर ही अधिक सम्पर्क हुआ है, फिर भी फोन से भी ऊर्जा ही प्राप्त हुई है। उनमें से भी यहां कुछ प्रेरक विद्वान उपस्थित हैं जैसे डा0 बी.एन. ओझा, डा0 आर.के. देशवाल, डा0 दीनानाथ सिंह, डा0 शशि प्रभा कुमार, प्रो0 एस.पी. दुबे। सर्वाधिक ऊर्जा प्रदान करने वाले प्रो0 अम्बिका दत्त शर्मा भी यहां उपस्थित हैं, जिनके कारण यह कार्य आपको समर्पित योग्य बना है, अन्यथा विद्वानों से टूटते हुए क्रम के कारण कई बार लेखन भी बन्द हुआ। अर्थात् आपके प्रोत्साहन का ही यह परिणाम है।

आज लगभग साढ़े छः अरब मानव समाज के [illegible] छः लाख मनुष्य ही दर्शन तथा कणाद जैसे शब्दों को जानते हैं, परन्तु वैशेषिक दर्शन का नाम तो इतने भी नहीं जानते और वैशेषिक दर्शन के जिज्ञासुओं की संख्या तो नगण्य जैसी है, क्योंकि पढ़ने के बाद भी दर्शन हाथ नहीं आता, अपितु विवादों का ही प्रत्यक्ष हो जाता है। वर्तमानस्वरूप को देखकर तो ऐसा लगता है कि महर्षि कणाद के द्वारा इस प्रकार की प्रतिज्ञा की गई-- अथातो विवादं व्याख्यास्यामः। क्योंकि शास्त्र विवादित है, सूत्र विवादित है, पद विवादित है, अक्षर, वर्ण और उनकी संख्या तथा उनके अर्थ भी एक विवाद हैं। शास्त्रकर्ता का भी विवाद है कि कणाद को उल्लू कहा जाता था अथवा नहीं? उल्लू के पुत्र थे अथवा नहीं? उल्लूस्वरूप गुरु से शास्त्र प्राप्त हुआ था अथवा नहीं?

क्या कणाद एक ऋषि थे अथवा नहीं? इसलिए मैंने सम्बन्धित विद्वानों के अन्य साहित्य तथा उनके जीवन वृतान्त को भी पढ़ा और कणाद तथा उनके शास्त्र को खोजना प्रारम्भ कर दिया। वेदों में खोजा, ब्राह्मणों में खोजा, उपनिषदों में खोजा, आरण्यकों में खोजा, पुराणों में खोजा, स्मृतियों में खोजा, शास्त्रों में खोजा, **गीताओं** में खोजा, बौद्ध, जैन, इस्लाम आदि की पुस्तकों में खोजा तो कणाद की सर्वत्र उपलब्धता प्रतीत हुई, परन्तु कणाद कहीं नहीं मिले। क्योंकि यदि टाईटल कणादिक है तो विषयवस्तु भिन्न है, यदि विषयवस्तु कणादिक है, तो टाईटिल भिन्न मिलता है।

खोज मेरी उपासना बन गई। यह हास्यस्पद भी कहा जा सकता है कि स्वप्न में भी कणाद को खोजने लगा और बताने वाले भी दिखायी दिये, उनसे संकेत भी मिले, परन्तु कणाद नहीं मिले। अर्थात नींद खुलने पर सोचता था कि कणाद उल्लू थे अथवा नहीं थे, परन्तु मैं उल्लू अवश्य बन रहा हूं क्योंकि छिपे हुए कणाद मुझे कहीं नहीं मिल रहे थे। ऐसी स्वप्नयात्रा में जब मैं खोज में व्यासक्त था, तब कहीं से आवाज सुनाई पड़ी-- कणाद् पदार्थम्, कणाद् पदार्थम्। जब मुड़कर देखा तो एक साधारणस्वरूप वाले मनुष्य के मुख से कुछ और शब्दों का निरन्तर उच्चारण होने लगा और मैं भी वही उच्चारण करने लगा-- अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्। और बोलते बोलते ही मेरी नींद टूट गई। यही मेरी वैशेषिक खोज का आदि काल 22 मई वैशेषिक दिवस के रूप में स्मरणीय हो गया। मैंने मान लिया कि वर्तमान विद्वानों के शब्द भी सही हैं कि कणाद स्वयं को ऋषि नहीं कहते थे क्योंकि स्वप्नपुरुष में भी साधारण मानव के ही शारीरिक लक्षण थे अर्थात् उपलब्ध ऋषियों के चित्रों से अलग थे। उनकी मार्गदर्शक कृपा से ही उनसे सम्बन्धित खोज हो सकी, क्योंकि यदि इस शिवानन्द शर्मा नामक शरीर में कोई क्षमता होती, तो बहुत पहले ऐसा ज्ञान का उदय हो गया होता।

खोज यात्रा तथा सम्बन्धित साहित्य का वर्णन का विस्तार एक ग्रन्थ बन गया-- जिसका नाम वैशेषिकपुनर्व्यवस्था, जिसके 18 अध्याय तथा 800 पृष्ठों में शास्त्र और शास्त्र परिवर्तन के कारण लिखे गये हैं। मैं पुनः श्रद्धेय विद्वान अम्बिका दत्त जी को याद करूंगा, जिन्होंने प्रकाशन के मार्ग भी बताये और आपात् स्थिति में उस ग्रन्थ के निष्कर्षस्वरूप वैशेषिक शास्त्र को ही प्रकाशित कराने का परामर्श दिया। इसलिए उस ग्रन्थ के 18वें अध्याय का भी

यह केवल **अंशमात्र** है, क्योंकि मूल ग्रन्थ के 18वें अध्याय में संस्कृत, अंग्रेजी तथा उर्दू में रूपान्तर अनुवाद भी हैं। जो सूत्र आज उपलब्ध होते हैं अथवा हुए हैं, वे सभी इसमें समायोजित हैं, परन्तु सूत्र एवं पद का क्रम, स्वरूप तथा अर्थ भी परिवर्तित रूप में प्रस्तुत हुआ है। यद्यपि प्रोत्साहित होकर वैशेषिकभाष्य नामक सूत्र व्याख्या का भी लिखना प्रारम्भ किया था, जिसका 4000 पृष्ठ का अनुमानित विस्तार जानकर बन्द कर दिया यदि आपकी कृपा से सम्पन्न हुआ, तो उसमें सरकार और समाज के संविधान दिखायी देंगे वैज्ञानिकों को प्रयोग मिलेंगे और सोना बनाने के सौ फार्मूले भी मिलेंगे। जिसके कारण भारत सोने की चिड़िया कहलाता था। यदि प्रकाशित नहीं हो सका, तो पाण्डुलिपियां (मूल टाईप) ही आपको समर्पित हो जायेगी। मैं समस्त की कृपाओं का आभारी हूं अन्यथा अब से पहले कभी भी किसी ब्राह्मणस्वरूप विद्वानों के सम्मेलन में अथवा किसी विमोचन समारोह में उपस्थित ही नहीं रहा हूं। यह पहला अवसर भी भारत के मुकुटतुल्य परम पवित्र स्थल जम्मू में प्राप्त हुआ है जहां से पेशावर के प्रकाण्ड ब्राह्मण वसुबन्धु जी के द्वारा ज्ञान की ऐसी गंगा प्रवाहित की गई कि उनके शब्द आज भी चीन, तिब्बत आदि देशों में वेदमंत्रों के समान प्रातः उच्चारणीय हैं। जिस प्रकार विष्णुलोक में उत्पन्न गंगा का उदय यहां से माना जाता है उसी प्रकार मेरठ में किया गया वैशेषिक दर्शन की पुनर्व्यवस्था कार्य का भी यहां से उदय माना जायेगा।

अतः विश्वबुद्धि के प्रतीक समस्त ब्राह्मणरूप विद्वानों की चरण वन्दना करते हुए उनकी प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रतिष्ठित सभापति जी के चरणों में महर्षि कणाद स्मृति संस्थान मेरठ द्वारा प्रकाशित द्वितीय संस्करण को विनम्र होकर समर्पित करता हूं और उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे इसको ग्रहण करने की कृपा करें, इसका विमोचन कराकर तथा जिज्ञासुओं को वितरण करने की कृपा करें तथा मुझे मात्र आशीर्वाद प्रदान करें।

जोरावर सभागार, जम्मूतवी।

दिनांक 8 नवम्बर, 2009

महर्षि गार्ग्य प्रसिद्ध कणाद दृष्ट

वैशेषिक-दर्शन

(पुनर्व्यवस्थित)

पुनर्व्यवस्थाकर्ता एवं वैशेषिक भाष्यकार,

पंडित शिवानन्द शर्मा

एडवोकेट, मेरठ।

- प्रथम संस्करण- वैशेषिक दिवस, 22 मई, 2009
- द्वितीय संस्करण- 2 नवम्बर, 2009 कार्तिक पूर्णिमा सम्वत् 2066
- तृतीय संस्करण- 20 नवम्बर, 2009

- प्रकाशकः

महर्षि कणाद स्मृति संस्थान

बी-63, शताब्दीनगर, मेरठ।

फोन- (0121) 2522235 मो0 9359359355, 9997123458

- मूल्य : बीस रुपया मात्र (विद्यार्थी संस्करण)

- टाइपिंग : मोहित मित्तल, B-246, श्रद्धापुरी, फेज-2, मेरठ

- मुद्रक : लोकराज प्रिन्टर्स, बी-63, शताब्दीनगर, मेरठ

''वैशेषिक पुनर्व्यवस्था'' ग्रन्थ के आधार पर-

प्रार्थना

अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् ।
सर्वैः मे रिक्तकुम्भानाम् परा तान्सवितः सुव ।।

-महर्षि गार्ग्य प्रसिद्ध कणाद

और प्रार्थना के साथ ही परम्परागत दर्शन के ग्रन्थों, भाष्यों, टीकाओं का अध्ययन किया, मनन, चिन्तन किया और पाया कि शब्दों के अर्थ भी बदलते आ रहे हैं। वैशेषिकदर्शन भी इतना बदल गया है कि वैशेषिकदर्शन का वर्तमान स्वरूप 'संदर्भ' ही रह गया है। शास्त्र भी खो चुका है और शास्त्रकर्ता भी खो चुके हैं। उनके दर्शन का भी नाम ही रह गया है। सभी सम्प्रदायों के वेदों, शास्त्रों एवं पुस्तकों की पुनर्व्यवस्था समय-समय पर होती रही है जो सनातन वेद की पुनर्व्यस्था ही सिद्ध होती है। लगभग 500 वर्ष पहले श्री शंकर मिश्र जी तथा 1500 वर्ष पहले श्री चन्द्रानन्द जी के द्वारा सूत्रों की तथा 2000 वर्ष पहले प्रशस्त जी के द्वारा वैशेषिक दर्शन की पुर्नव्यवस्था ही की गयी है फिर भी आज पुनर्व्यवस्था अपेक्षित है। अतः वर्तमान वैशेषिक दर्शन में वैशेषिकदर्शन, वैशेषिक शास्त्र तथा शास्त्रकर्त्ता का अनुसन्धान ही प्रथमतः आज मूल विषय है और ''वैशेषिक पुनर्व्यवस्था'' तो मात्र दिग्दर्शक, तथा प्रेरक प्रयास ही है।

यद्यपि आज 'पण्डित' का अर्थ शक्तिशाली अपराधी अथवा मूर्ख माना जाता है, 'गुरु' का अर्थ भी चालबाज माना जाता है, 'विद्वान'- का अर्थ किसी सम्प्रदाय से संबद्ध व्यक्ति को ही माना जाता है, फिर भी यदि कुछ समय पूर्व की साहित्य शब्दावली के अनुसार ही अर्थ मान लिये जाते हैं, तो मेरा दावा नहीं है कि मैं प्रकाण्ड पण्डित हूँ अथवा पढ़ा लिखा विद्वान हूँ अथवा समझाने में समर्थ धर्मगुरु हूँ, संस्कृत, अरबी, उर्दू, गुजराती, अंग्रेजी, चीनी, आदि किसी भी भाषा का विशेषज्ञ जानकार हूँ, परन्तु संस्कृत भाषा की श्रेष्ठता तथा वैदिकदर्शन की पूर्णता से प्रभावित होना एवं मूलता से दर्शन के खिसकने की वेदना ही मेरी क्षमता है, मेरा ज्ञान है और इसका फल ही 'वैशेषिक पुनर्व्यवस्था' है। स्वयं को अल्पतम ज्ञानी मानकर दर्शन एवं भाषा के श्रद्धेय विद्वान जिज्ञासुओं के लिए समालोचना के माध्यम से चिन्तन प्रवाहित करना ही मेरा प्रयोजन है।

न किसी मान की अभिलाषा है, न किसी अपमान का भय है, फिर भी हर प्रकार के प्रशस्ति पत्र आने से पहले अग्रिम रूप में नतमस्तक होकर

धन्यवाद प्रस्तुत करता हूँ, क्योंकि चिन्तन को अग्रसर करने वालों के लिए ''कणाद'' जैसे समस्त पूर्वजों का तथा कारणों के कारण 'विशेष' का शुभाशीष अवश्य प्राप्त होगा। हर प्रकार की आलोचना प्राप्त होने से पहले ही नतमस्तक होकर क्षमायाचना भी प्रस्तुत करता हूँ, परन्तु मेरे द्वारा जानकर कुछ भी ऐसा नहीं किया गया है, जिससे किसी भी साम्प्रदायिक अथवा पारम्परिक शास्त्र का अपमान हो अथवा किसी भी प्राणी में किसी प्रकार के दुःख का उदय हो। अपितु मौलिक नाम के अनुरूप ''सेवा'' ही मेरा प्रयोजन है, सभी का सम्मान मेरा प्रयोजन है, समस्त को एक स्वरूप में समझाना मेरा प्रयोजन है, फिर भी जो किया गया है, वह व्यर्थ कल्पना नहीं है, अपितु गहन चिन्तन का विषय है।

यद्यपि 'वैशेषिकपुनर्व्यवस्था' में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ ग्रन्थ के अनुरूप स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है और अनुकलृप्ति जैसे क्लिष्ट शब्दों को समझने के लिए सम्भव प्रयोग भी दिया गया है, फिर भी सरलता एवं सुबोधता का प्रयास है और किसी भी शब्द का प्रयोग विद्वता को दर्शाने का प्रयोजन नहीं है। अब तक उपलब्ध ग्रन्थों से उपलब्ध दर्शन तथा सूत्रों का ही समायोजन है, फिर भी ऐसा दावा नहीं है कि इनसे अलग कोई सूत्र विद्यमान नहीं है अथवा विद्यमान नहीं था। सभी सूत्रों के स्वरूप का निर्धारण करने का मुख्यतः आधार सूत्ररचना का सम्भावित काल तथा सूत्रदर्शनसारांश है। विभिन्न चिन्तकों के उपलब्ध मतों को स्पष्ट करते हुए सूत्रों का दर्शन अलग स्थापित करने का प्रयास ही प्रयोजन है। उनके बहुमूल्य चिन्तन का समायोजन करके कुछ चिन्तनभ्रान्तियों का स्पष्टीकरण भी विषय है, फिर भी यह दावा नहीं है कि पुनर्व्यवस्थित वैशेषिकदर्शन के समस्त सूत्र कणाद की ही रचना है, परन्तु कणादिक अथवा वैशेषिकसिद्धान्तों के अनुरूप सिद्ध होने पर ही निर्धारण करना प्रयोजन है। संकलित सूत्रों का वैशेषिक स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयोजन है।

यह भी समझाना प्रयोजन है कि वैशेषिक शास्त्र की आध्यात्मिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा वैशेषिक व्याख्या होना आवश्यक है। ''वैशेषिकपुनर्व्यवस्था'' तो सूत्रस्वरूप ही है। वैशेषिक दर्शन को एक प्रकाशस्तम्भ के समान विश्व के जिज्ञासुओं के लिए स्थापित करना जनोपयोगी भी है। अतः वैशेषिकदर्शन, वैशेषिकशास्त्र तथा शास्त्रकर्ता का निर्धारण करके मात्र प्रेरणादायक बनाना ही प्रयोजन है। इसलिए 'वैशेषिकपुनर्व्यवस्था' में बार-बार संदर्भ आने से पुनरावृत्ति तथा निम्न श्रेणी की शैली का प्रयोग भी सहनीय ही है। प्रथमतः वर्तमान वैशेषिकदर्शन के उपलब्ध साहित्य की प्रस्तुति के बाद ही विवेचना विचारणीय है अर्थात् उपलब्ध वैशेषिकदर्शन को पहले यथावत् जानना आवश्यक है।

अनेक रूप ब्रह्म एवं समस्त जगत के दर्शन हेतु दर्शनशास्त्र दर्पण होते हैं। इनके लिये ही होते है तथा इनके द्वारा ही बनते है, परन्तु एक समुदाय, एक परम्परा, एक विषयक ही व्याख्या होने से ऐकिक ही दिखायी पड़ते है। अर्थात ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि का विषय ही दर्शन कहलाने लगा है, जबकि समस्त दर्शनशास्त्रों में समाज का व्यवस्थाज्ञान, जगत का विज्ञान, प्राणियों का अध्यात्म तथा समस्त सूत्रजाल के मूल बिन्दु की ओर प्रवाह (अभिसर्पण) का भी दर्शन है। समस्त के लिये उपयोगी बनाने हेतु मात्र समस्त शास्त्रों की भी ऐसी ही व्याख्या अपेक्षित है, जिससे समाज के प्रत्येक क्षेत्र को लाभ प्राप्त हो सके। आज शास्त्रों की केवल आध्यात्मिक व्याख्यायें ही उपलब्ध है, जो दर्शन के मूल हेतु का प्रकाशन नहीं कर पातीं हैं।

वैशेषिकशास्त्र भी अनेक शास्त्रों में एक शास्त्र ही है, जिसका दर्शन भी सबसे अलग है, परन्तु इसका कोई स्वतन्त्र आस्तित्व ही उपलब्ध नहीं है, क्योंकि न तो इसका कोई एकमात्र सूत्रसंकलन है, न इसका कोई भाष्य है, न कोई क्रम है, न कोई स्पष्ट स्वतन्त्र व्याख्या है। अन्य दर्शनों में मिलाकर समझाने से इसका कोई स्वतन्त्र दर्शन भी उपलब्ध नहीं है। यदि कुछ उपलब्ध है, तो वह 'विवाद' है, अन्यथा इसमें भी अलग ज्ञान है, अलग विज्ञान है, अलग प्रकार का क्रम है, अलग प्रकार का द्वैतवाद है, अलग प्रकार का अद्वैतवाद है, अलग प्रकार का त्रैतवाद है। अलग प्रकार का प्रकृतवाद है, अलग प्रकार का वस्तुवाद है तथा बहुत्ववाद भी अलग है। आत्मा तथा परमात्मा का अर्थ अलग ही है। वस्तु तथा तत्व का अर्थ भी अलग है। मोक्ष, निःश्रेयस तथा पदार्थ का अर्थ अलग है। साधर्मता तथा विधर्मता की गणना मात्र से ही सत्य की सिद्धि का एक सरल तथा दिव्य मार्ग है। "एक" की पहचान बताता है, तो अनेक का कारण भी बताता है। सत्य तथा असत्य का भेद बताता है और असत्य होने का कारण भी बताता है।

जिस प्रकार कृष्ण कन्हैया के मुख में माता यशोदा को समस्त ब्रह्माण्ड दिखायी दिये थे, उसी प्रकार वैशेषिक शास्त्र में विश्व के समस्त दर्शन दिखायी दे जाते हैं। वैशेषिक दर्शन विश्व के समस्त वेदों की कुंजी है अथवा शब्द कोष है अथवा निरुक्त है। राज, समाज, ज्ञान, विज्ञान आदि के सर्वकालिक स्वरूप का दर्पण है। विद्धानों, वैज्ञानिकों, धर्म जिज्ञासुओं तथा सर्व साधारण के लिये परम उपयोगी है क्योंकि समस्त भौतिक, आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त कराता है। अतः इसका पढ़ना तथा पढ़ाना परम पुण्यदायक है। द्रव्य के विभाग की पुष्टि करता है और एकीकरण को समझाता है। अरब देशों के समान भारत

की धरती से तेल के निकलने का संकेत देता है, मिट्टी से सोना बनाने की कल्पना को साकार करने से ही भारत सोने की चिड़िया कहलाता था। ठोस, द्रव आदि पाँच द्रव्य की अवस्थायें, जो विज्ञान को प्राप्त हुई हैं, उनसे अधिक का स्पष्ट संकेत है। मन की गति के अनुरूप चलने वाले देव स्वरूप में मानवों के होने का संकेत है। सृष्टि नाश की भ्रामक भविष्यवाणियों से निर्भय होने का संकेत है परन्तु बाईसवीं सदी में दशमांश आबादी का नियन्त्रणकेन्द्र भारत ही होगा, क्योंकि सहकारी भावना का केन्द्र भारत ही है। प्रेम और सुरक्षा का सन्देश प्राचीन काल में भी यहां ही प्रकट हुआ है। राजधानी परिवर्तन की घटना असम्भव भी प्रतीत होती है, परन्तु ऐसी समस्त सम्भावनाओं का आधार प्राचीन विज्ञान तथा प्राचीन ज्ञान है, जो वैशेषिक दर्शन की व्याख्या से अधिक स्पष्ट हो सकता है।

वेद इसका मूल है। ''विशेष'' इसका परमेश्वर है। निराकार ब्रह्म को समझाते हुये भी साकार ब्रह्म इसकी गीता है। परमाणु का जनक है, परन्तु विभु के धर्मों की भी व्याख्या है। शून्य स्वरूप की परिभाषा है। मिट्टी से सोना बनाने का स्पष्ट संदर्भ है। दर्शनभाषा के जानकार भी भ्रमजाल में पड़कर चक्रवात बन गये है। शास्त्रकर्त्ता का मौलिक चिन्तन तथा मौलिक परिचय लुप्त प्रायः हो गया है और अब शास्त्रकर्त्ता तथा शास्त्र के केवल प्रसिद्ध नाम ही रह गये है। उनके ही सहारे चलकर वैशेषिक दर्शन में वैशेषिकस्तम्भ तथा शास्त्रकर्त्ता की स्थापना 'वैशेषिक पुनर्व्यवस्था' में हुयी है, जिसमें लगभग १०८ ग्रन्थों से समझा गया सारांश है, जिसमें न किसी का खण्डन है, न किसी का मण्डन है, अपितु वैशेषिक दर्शन के प्रति आक्षेपों, भ्रान्तियों तथा लुप्त विषय का स्पष्टीकरण है। वैशेषिक दर्शन के जिज्ञासुओं के लिये वैशेषिक प्रवाह को दिखाने का भी प्रयास मात्र है।

'वैशेषिकपुनर्व्यवस्था' में प्रारम्भिक अध्ययाओं में आज उपलब्ध वैशेषिक ग्रन्थ, वैशेषिक संदर्भ तथा वैशेषिक दर्शन का एकत्रिकरण ही है। समझने के लिए प्रशस्ताधारितवैशेषिक, संदर्भआधारितवैशेषिक, प्रशस्तपूर्ववैशेषिक आदि में अलग-अलग करके वर्तमान वैशेषिकदर्शन को प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् पुनर्व्यवस्था की अपेक्षा को बताते हुये उपलब्ध सामग्री की विवेचना का आरम्भ है। 'पदार्थधर्मसंग्रह', न्यायशास्त्र तथा तीन सूत्र सकंलनों को वैशेषिक पुनर्व्यवस्था में यथावत् प्रस्तुत किया गया है। सूत्रों के दर्शन को अलग करके दिखाने का प्रयास भी है।

प्राचीन टीका चन्द्रानन्द वृत्ति, जैन मुनि श्री पुण्यविजय जी द्वारा लिखित वृत्ति तथा सूत्रपाठ पर आधारित ओरियेन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा से प्रकाशित सूत्र संकलन टीका (ब0), मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा से प्रकाशित

सूत्र संकलन टीका (मि0), श्री शंकर मिश्र जी द्वारा लिखित उपस्कार प्रचलित वैशेषिक दर्शन (उ0), वैशेषिक सम्बन्धित श्री प्रशस्तपाद जी द्वारा लिखित पदार्थ धर्म संग्रह (प0), श्री व्योमशिवाचार्य की 'व्योमवती', श्री जगदीशतर्कालंकार की 'सूक्ति', श्री पद्मनाभ मिश्र जी की सेतू, श्री उदयनाचार्य जी की किरणावली, श्रीधराचार्य की 'न्यायकन्दली' श्री शंकर मिश्र जी की "कणाद रहस्य", श्री शिवादित्य मिश्र जी की "सप्तपदार्थों", वादिवागीश्वरचार्य की "मान मनोहर", श्री भट्टवादीन्द की कणाद "सूत्र निबंध", डा0 एच0 उई की "वैशेषिक फिलोसफी", बौद्धग्रन्थ 'लंकावतार सूत्र' तथा 'मिलिन्द प्रश्न' तथा हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, शारदा, देवनागरी, गुजराती तथा चीनी भाषा के अन्य ग्रन्थों से प्राप्त सूत्र तथा दर्शन को ही पुनर्व्यवस्थित किया गया है, अर्थात नया नहीं है, शास्त्र की सीमा से बाहर नहीं है। इस संकलन में जो सूत्र हैं, वे ही उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त सूत्रों की मुझे कोई उपलब्धि नहीं है। फिर भी भविष्य में जिज्ञासुओं के द्वारा अनुसन्धान कार्य करना वर्तमान समाज के लिए अति आवश्यक है। क्योंकि आज "धर्म" की व्याख्या सनातन धर्म की व्याख्या से अलग हो गयी है और अनेक सम्प्रदाय तथा उनके अनेक वेद बन गये हैं। धर्म की भ्रामक व्याख्याओं के कारण राज और समाज में अराजकता और अशान्ति हो गयी है। जाति एवं वर्ण का भेद समाप्त होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा शूद्र वर्ण का विनाश प्रायः ही हो गया है। आज सभी जातियों में केवल वैश्य वर्ण धर्म का बोलबाला है। न लोकतन्त्र है, न राजतन्त्र, अपितु धन तन्त्र है। अर्थात धन ही धर्म होने से अपना-अपना धर्म ही भूल गये हैं और कर्तव्य भ्रष्ट होकर परस्पर एक दूसरे को भ्रष्ट बताना तथा अपना धनहित साध लेना ही परम कर्तव्य माना जा रहा है। अतः "वसुधैव कुटुम्बकम्" पोषक सनातन वेद की स्थापना आवश्यक है, जिसको स्थापित करने में केवल और केवल वैशेषिक दर्शन ही समर्थ है। जिसमें वर्तमान विज्ञान से सनातन ज्ञान को समझाया गया है इससे विज्ञान का चिन्तन अधिक प्रवाहित करने, विभाजन से पीड़ित समाज में एकरसता उत्पन्न करने, शासन तथा प्रशासन में सुधार लाने की क्षमता है।

श्रीकृष्णद्वैपायन प्रसिद्ध वेदव्यास जी द्वारा संकलित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद भी सम्पूर्ण सनातन वेद नहीं हैं, अपितु सनातन वेद का अंश मात्र है। एक मत के अनुसार इनमें जगत रूप ही समझाया गया है और आत्म रूप जगत के द्वारा ही कर्मकाण्ड को बताया गया है। एक मत के अनुसार जगत, आत्मा तथा जगत का कारण अलग अलग है। एकमत से

इनकी व्याख्या के रूप में एतरेय, शतपथ, ताण्डय, गोपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों को स्वीकार किया जाता है, तो दूसरा मत ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित कर्मकाण्ड को संक्षिप्त करता है। इसी को अस्वीकार करना अथवा ब्राह्मण जाति का विरोध करना कहा जाता है। एक वर्ग ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माणुक्य, तैतिरिय, एतरेय, श्वेताश्वर, छान्दोग्य तथा ब्रहदारण्यक उपनिषदों को ही वेद मानता है और जगत के कारण को निराकार बताता है। एक वर्ग के द्वारा आरणयक ग्रन्थों को भी वेद माना गया है, जो सन्यास वर्ग कहलाता है। निराकार की परिभाषायें सभी की अलग-अलग हैं और साकार ब्रह्म के रूप भी अलग-अलग हैं, परन्तु विधमानता सभी को स्वीकार है।

विष्णु, ब्रह्मा, रूद्र, राम, कृष्ण आदि भगवान रूप का भौतिक स्वरूप तो स्पष्ट ही हो जाता है, परन्तु निराकार का स्वरूप विवादित है। यद्यपि सभी का आधार ॐ आदि रूप में साकार ही जान पड़ता है। ऋग्वेद तथा अन्य समस्त सम्प्रदायों के कुरान आदि वेद भी सनातन वेद के अंशमात्र ही हैं। यद्यपि इनके आधार पर निराकार को प्राप्त करने की प्रेरणा तो प्राप्त होती है, फिर भी प्राप्त होना विवादित है। क्योंकि अज्ञेय बताया जाता है अथवा विशेष साधनों से ज्ञेय कहा जाता है। संक्षेप में एकमत के अनुसार जगत का स्वरूप दर्पण चित्र (असत् मिथ्या) के समान है अर्थात यह जगत किसी मूल जगत का चित्र है अथवा मूल जगत भी निराकार है। वैशेषिक शास्त्र का आरम्भ जगत है और जगत का कारण अन्त है अर्थात भौतिक होकर अभौतिक भी है। जगत की उत्पत्ति जगत से ही होती है। कर्ता जगत में ही समवेत है। दर्शन को अधिक स्पष्ट करने के लिए वैशेषिक भाष्य तथा वैशेषिक पुर्नव्यवस्था दोनों का निरन्तर अध्ययन आवश्यक है। जिसमें यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू, वैदिक आदि नाम भी जाति बोधक अथवा उपाधि हैं। जो इस्लाम, इसाई आदि का विरोध करें उसी को हिन्दू माना जाता है, जो ब्राह्मण ग्रन्थों (कर्म काण्ड) का विरोध करे उसको ही वैदिक माना जाता है अथवा वैदिक प्रमाणित है। शेष नास्तिक हैं अथवा सनातनिक हैं। इस प्रकार सनातन वेद समस्त प्रकार के विवादों से अलग तथा पूर्ण है। वैशेषिक मत से जगत तथा जगत का कारण, आत्मा परमात्मा आदि सम्पूर्ण पदार्थ है। द्रव्य गुण कर्म में ही सम्पूर्ण पदों का अर्थ है। प्रत्यक्ष होने से जो उत्पन्न होता है, वह पदार्थ है और जगत आत्मा परमात्मा आदि का प्रत्यक्ष है। जिस प्रकार वैज्ञानिकों के द्वारा किये गये प्रत्यक्ष से विज्ञान वेद की रचना होती है उसी प्रकार श्रुति स्मृति कुरान आदि सनातन वेद सहित समस्त वेदों की रचना भी पुरुष के द्वारा ही होती है।

सूत्रकार के मौलिक दर्शन को स्पष्ट करने के साथ ही सूत्रकार का मौलिक जीवनवृत प्रकट करने का प्रयास है, जिसका आधार कल्पना नहीं है। अपितु उपलब्ध विवरण से भी विद्वानों द्वारा जन्मांग बनाया जाना भी सम्भव है क्योंकि वेदों में इसका विधान है। सूत्रसंकलनों एवं अन्य ग्रन्थों में प्राप्त समस्त एक-एक सूत्र का स्वरूप मौलिक वैशेषिक की उपयोगिता के आधार पर निर्धारण किया गया है। किसी भी उपलब्ध सूत्र की उपेक्षा नहीं हुयी है, अपितु सभी का वैशेषिक भाव स्पष्ट करके वैशेषिक शास्त्र में समायोजित किया गया है, अर्थात उपस्कार के ३७०, मिथिला के ३२४, बडौदा के ३८४ तथा अन्य ग्रन्थों से उपलब्ध सभी सूत्रों का समायोजन हो जाने से अब 'वैशेषिक शास्त्र' में ४३६ सूत्र तथा 1214 पद हो गये हैं, जिनका 'वैशेषिक पुनर्व्यवस्था' के सारांश स्वरूप अठारहवें अध्याय में पुनर्व्यवस्थित 'वैशेषिकदर्शन' को स्थापित किया गया है। प्राचीन संस्कृत भाषा की प्रथा के अनुसार सूत्रों में पद, वर्ण, स्वर तथा अक्षर नियत करके शास्त्र को सुनिश्चित (लाकिंग) किया गया है। सूत्रों से प्रकट पुनर्व्यवस्थित दर्शन के अनुरूप सूत्रों की व्याख्या लिखने के लिये टीका भी प्रस्तुत की गयी है, जिससे दर्शन जिज्ञासुओं के द्वारा व्याख्या लिखी जा सके। अर्थात् इस वैशेषिक सूत्रपाठ के माध्यम से 'वैशेषिकपुनर्व्यवस्था' का अठारहवाँ अध्याय अंश रूप में ही प्रस्तुत हुआ है, जिसका अन्य भाषाओं में अनुवाद एवं टीका आदि भी अपेक्षित है। क्योंकि विद्वानों से ऐसा परामर्श भी प्राप्त हुआ और अधिक प्रचार भी सम्भव हो सकता है।

इस प्रकार, अठारह अध्याय वाले वैशेषिक ग्रन्थ का अठारहवाँ अध्याय ही वर्तमान पुनर्व्यवस्थित वैशेषिकदर्शन है। इसमें भी अठारह ही मण्डल (अध्याय) है। उनके विभाग का कारण स्पष्ट करने के पश्चात् इतना कहना ही पर्याप्त है कि वैशेषिकशास्त्र से प्राप्त दर्शन के अनुरूप विषय के अनुसार ही विभाग बनाये गये हैं, परन्तु अब शास्त्र का प्रारम्भ 'वेद' से होता है और धर्मव्याख्या की प्रतिज्ञा दूसरे मण्डल में होने के पश्चात् धर्म से ही शास्त्र का समापन है। अर्थात शास्त्र में धर्म ही धर्म है, धर्म से अलग कुछ भी नहीं है। विषय क्रमता होने से अब वैशेषिक शास्त्र का अध्ययन सरल एवं सुबोध होने की आशा है। अर्थात अष्टादश मण्डलों में ४३६ सूत्र प्रस्तुत है।

इस पुनर्व्यवस्था के महत्वपूर्ण कार्य के उपादान कारणों में सर्वप्रथम कारण होने से मेरे परिवार का ही आभार है, जिसके द्वारा अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया गया। उ० प्र० संस्कृत अकादमी के पूर्व अध्यक्ष डॉ० रामनाथ

शर्मा 'सुमन' जी का आभार है, जिनके द्वारा संस्कृत की वर्णमाला का दीप जलाया गया। उसके बाद प्रेरणादायक स्वरूप कलकत्ता यूनीवर्सिटी के डॉ0 धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री जी (मेरठ मूल निवासी) विलेश्वर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ० चिन्तामणी जोशी जी, राजवीर शास्त्रीजी, कृषक डिग्री कॉलिज के प्राचार्य डॉ० विजेन्द्रसिंह तोमरजी, महामहोपाध्याय डॉ० सुधाकराचार्य त्रिपाठीजी, देवनागरी डिग्री कॉलिज के प्राचार्य डॉ० त्रिवेणीदत्त शर्माजी, एन.ए.एस. कॉलिज के आचार्य डॉ० राजेशमोहन शर्माजी, इस्माईल डिग्री कॉलिज की प्राचार्या डॉ० इन्दू शर्माजी, सुशीला देवी कन्या इन्टर कॉलिज की आचार्या इन्दू शर्मा पूर्व ग्रामप्रधान नानक चन्द शर्मा जी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के डॉ० रजनीशशुक्लाजी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के डॉ० आनन्दमिश्राजी, डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय के प्रो० अम्बिकादत्तशर्माजी, तथा मेरठ कॉलिज के डॉ० दीनानाथसिंह जी, आई0पी0एस0 मेरठ के डायरेक्टर डॉ0 ज्ञानेन्द्र शर्मा जी, डॉ० वेदप्रकाश जी, पत्रकार गुरमीतसाहनीजी, पियुष शास्त्रीजी, प्रमोदकुमार शास्त्रीजी, भव्यनिधि शर्मा एडवोकेट एवं हरिओमशर्मा एडवोकेट, शीशपालसिंह एडवोकेट, डॉ० मैराजूदीन अहमद जी, उत्तरांचल से समाजशास्त्री परमस्नेही कुलदीप शर्मा एवं डॉ० निशा शर्मा का आभार है, जिनके द्वारा चिन्तन प्रवाह में अकल्पनीय योगदान की कृपा की गयी है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त ऐसे सभी प्रकाशकों एवं विद्वान लेखकों एवं चिन्तकों का योगदान भारतवासियों के लिये आदरणीय है, जिनके द्वारा उपलब्ध वैशेषिक दर्शन के रूप में प्राचीन ज्ञान तथा विज्ञान को सहेज कर रखा गया है क्योंकि वे सभी भारतीय ऋषिगण के आशीर्वाद के पात्र भी बन चुके हैं। वर्तमान पुनर्व्यवस्था के लिये प्रेरणा, आरम्भ अथवा पुनर्व्यवस्था दिवस 22 मई को महर्षि कणाद की स्मृति रूप में **वैशेषिक दिवस** निर्धारण है, जिससे वर्तमान समाज की आवश्यकता के अनुसार वैशेषिक प्रवाह की निरन्तरता बन सके। 22 मई, 2009

पण्डित शिवानन्द शर्मा

सम्पर्क :

89, गणेशपुरी मेरठ शहर-250002

मो० नं०--09359696961

panditshivanandsharma@gmail.com.

वैशेषिक दर्शन

(पुनर्व्यवस्थित)

मण्डल-1

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे ॥१-१॥

सूत्रार्थ- पूर्व प्रत्यक्ष ज्ञान (बुद्धि नामक गुण) के अनुसार वेद के वाक्यों की रचना होती है। ऋक् आदि नामक समस्त वेद, कुरान, अवेस्ता, लगभग 87 पुस्तकों वाली बाईबिल, त्रिपिटक, जैनागम, ब्रहस्पति सूत्र तथा विज्ञान पुस्तकें आदि समस्त सम्प्रदायों की सर्व विषयक पुस्तकें वेद कहलाती हैं, जो सनातन वेद का अंशमात्र है अर्थात वेद का तात्पर्य उपलब्ध के अतिरिक्त प्राचीन वेद भी है। वाक्य से तात्पर्य श्रुति, स्मृति, आयत, शब्द आदि हैं।

स चास्मद् बुद्धिभ्यो लिङ्गमृषेः ॥१-२॥

सूत्रार्थ- और वह पूर्व प्रत्यक्ष ज्ञान, जिस प्रकार हमारे द्वारा प्रमाणित होता है उसी प्रकार प्राचीन ऋषियों से भी पूर्व प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाणित होता है। ऋषिगण का अभिप्राय श्रुति, स्मृति, प्रत्यभिज्ञा, अनुमान, प्रत्यक्ष आदि के द्वारा ज्ञान को प्राप्त करने वाले साकार पुरुष है अर्थात वैज्ञानिक, नवी, अवतार, चार्वाक, महावीर, ह0 मौहम्मद, ह0 ईसा, ह0 मूसा, जरस्थु, बुद्ध आदि ऋषि शब्द अभिप्रेत हैं।

तथा ब्राह्मणे संज्ञाकर्म सिद्धिलिङ्गम् ॥१-३॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार ब्राह्मण में संज्ञा कर्मों का वर्णन उस पूर्व प्रत्यक्ष ज्ञान का प्रमाण होता है। ब्राह्मण शब्द का अभिप्राय समस्त वेदों के व्याख्याकर्तागण, उनके वचन, उपदेश, शतपथ, हदीस आदि तथा पूर्व प्रत्यक्ष ज्ञान के व्याख्याग्रन्थ। संज्ञाकर्मता के अन्तर्गत किसी पदार्थ का नाम रखना, जिसके लिये ग्रह नक्षत्र तथा राशि के अनुसार निर्धारित प्रथम अक्षर से प्रारम्भ करना कहा जाता है। परन्तु अन्य सम्प्रदायों के अनुसार नामकरण की समस्त विहित प्रक्रियायें हैं, उनसे भी यही अभिप्राय है।

बुद्धिपूर्वो ददातिः ॥१-४॥

सूत्रार्थ- दान आदि प्रत्येक प्रकार का देना भी पूर्व प्राप्त ज्ञान के अनुसार ही होता है। दान के अन्तर्गत श्राद्ध आदि समस्त ऐसे वेद विहित कर्म होते हैं जिनमें एक पुरुष दूसरे को पदार्थ अथवा अधिकार प्रदान करता है।

तथा प्रतिग्रहः ॥१-५॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार ग्रहण करना भी पूर्व प्राप्त ज्ञान के अनुसार होता है।

तयोः क्रमो यथाऽनितरेतरङ्गभूतानाम् ॥१-६॥

सूत्रार्थ- और उन दोनों का क्रम होता है, जैसे भूत पदार्थ परस्पर एक दूसरे के अंग होते हैं अर्थात देना तथा लेना एक दूसरे के समवायि कारण अथवा कार्य कारण नहीं होते हैं।

आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् ॥१-७॥

सूत्रार्थ- आत्मा के गुणों में अन्य आत्मा के गुणों की अकारणता होने से कार्य कारण सम्बन्ध नहीं होता है।

अदुष्टभोजनात् समभिव्याहारतोऽभ्युदयः ॥१-८॥

सूत्रार्थ- दोष रहित भोजन से प्राप्त अभीष्टसमरूप आशीर्वाद से अभीष्ट की प्राप्ति होती है। अर्थात श्राद्धकर्ता तथा अभीष्ट प्राप्तकर्ता में अभीष्ट फल का क्रम सम्बन्ध होता है, कार्य कारण सम्बन्ध नहीं होता है।

तद्दुष्टभोजने न विद्यते ॥१-९॥

सूत्रार्थ- उस अभीष्ट फल की प्राप्ति भोजन के दोषपूर्ण होने पर नहीं होती है।

दुष्टं हिंसायाम् ॥१-१०॥

सूत्रार्थ- अन्य के अभीष्ट में बाधकों को दुष्ट (दोषपूर्ण, अनुपयोगी) कहा जाता है।

तस्य समभिव्याहारतो दोषः ॥१-११॥

सूत्रार्थ- उससे (भोजन के अनुपयोगी अथवा दुष्ट होने) से अभीष्ट के समरूप आशीष वचन दोष (अभिशाप) हो जाता है।

तददुष्टे न विद्यते ॥१-१२॥

सूत्रार्थ- भोजन के दोष रहित होने पर वह दोष (अभिशाप) नहीं होता है। इस प्रकार श्राद्ध कर्म के दृष्टान्त से कर्म से फल प्राप्ति को समझाया है। अधिक जानकारी के लिये "वैशेषिक भाष्य" पढ़ें।

विशिष्टे प्रवृत्तिः ॥१-१३॥

सूत्रार्थ- अन्य के अभीष्ट अथवा हिंसा से सम्बन्धित कर्म (यज्ञ) साधनों में श्रेष्ठ का उपयोग करना बताया गया है।

समे हीने चाप्रवृत्तिः ॥५-१४॥

सूत्रार्थ- और मध्यम तथा अधम साधन का उपयोग न करना भी कहा गया है।

पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः ॥१-१५॥

सूत्रार्थ- श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ साधन का उपयोग बताया गया है।

समे हीने वा प्रवृत्तिः ॥१-१६॥

सूत्रार्थ- मध्यम अथवा अधम साधन होने पर भी उपयोग करना कहा जाता है अर्थात देश, काल, परिस्थिति के अनुसार साधनों का चयन होना बताया जाता है।

एतेन हीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यः परस्वादानं व्याख्यातम् ॥१-१७॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार अधम, मध्यम तथा श्रेष्ठ धार्मिकों से फल प्राप्ति का वर्णन है अर्थात श्राद्धकर्ता अथवा यज्ञकर्ता का कर्म प्राप्तकर्ता के फल का समवायि कारंण नहीं होता है और क्रम सम्बन्ध के कारण कर्ता के कर्म का फल कर्ता तथा अन्य को भी प्राप्त होता है।

तथा विरुद्धानां त्यागः ॥१-१८॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार विपरीत धार्मिकों का त्याग करना बताया जाता है।

हीने परे त्यागः ॥१-१९॥

सूत्रार्थ- अधम होने पर तथा भिन्न (दूसरा) होने पर त्याग बताया जाता है।

समे आत्मत्यागः परत्यागो वा ॥१-२०॥

सूत्रार्थ- मध्यम होने पर अपने धर्म का अथवा अन्य के धर्म का त्याग बताया जाता है।

विशिष्टे आत्मत्याग इति ॥१-२१॥

सूत्रार्थ- श्रेष्ठ होने पर अपने धर्म का त्याग भी बताया जाता है।

दृष्टादृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोजनमभ्युदयाय ॥१-२२॥

सूत्रार्थ- दृष्ट तथा अदृष्ट प्रयोजनों के दृष्ट न होने पर प्रयोजन (परिणाम) अभ्युदय कारक (अभीष्ट फल की प्राप्ति कराने वाला) होता है।

दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगेऽभ्युदयाय। ॥१-२३॥

सूत्रार्थ- दृष्ट परिणाम वाले कर्मों के दृष्ट परिणाम दिखायी न देने पर उन कर्मों का अनुष्ठान (करते रहना) अभ्युदय कारक होता है, ऐसा बताया जाता है।

अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरूकुलवासवानप्रस्थ-
यज्ञदानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्रकालनियमाश्चादृष्टाय ॥१-२४॥

सूत्रार्थ- अभिषेचन (तीथ स्थान, तीर्थाटन), उपवास (व्रत, रोजा आदि) ब्रह्मचर्य (स्वयं के पुष्टिकारक कर्म), गुरुकुलवास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दान, प्रोक्षण

(अभियंत्रित जल का छिड़कना), दिशा, नक्षत्र, काल तथा अन्य नियमों का होना आदि कर्मों का फल (परिणाम) अदृष्ट होता है।

चातुराश्रम्यमुपधा अनुपधाश्च ॥१-२५॥

सूत्रार्थ- चारों आश्रमों के ग्रहणकर्ताओं के लिये निर्धारित कर्मों के भी उपधा तथा अनुपधा दो विभाग बताये जाते हैं। अर्थात अदृष्ट फल वाले कर्मों के दो भाग हैं।

भावदोष उपधाऽदोषोऽनुपधा ॥१-२६॥

सूत्रार्थ- भाव दोष (अन्तः दोष) वाले कर्म उपधा कहलाते हैं तथा भाव दोष रहित अनुपधा कर्म कहलाते हैं।

यदिष्टरूपरसगन्धस्पर्शं प्रोक्षितमभ्युक्षितं च तच्छुचि ॥१-२७॥

सूत्रार्थ- पदार्थों के जो रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श गुण प्रत्येक सम्प्रदाय के वेद के अनुसार पवित्र बताये गये हैं, प्रोक्षित (अभिमन्त्रित जल से पवित्र किये गये हैं तथा अन्य प्रकार से पवित्र हैं, वे पदार्थ पवित्र बताये जाते हैं।

अशुचीति शुचिप्रतिषेधः ॥१-२८॥

सूत्रार्थ- इस प्रकार पवित्र की अस्वीकृति अपवित्र है।

अर्थान्तरं च ॥१-२९॥

सूत्रार्थ- और दूसरा पदार्थ भी अपवित्र कहलाता है।

अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते नियमाभावात् ॥१-३०॥

सूत्रार्थ- नियमों का पालन न होने पर पवित्र भोजन से असंयमी (कर्ता) को अभ्युदय (अभीष्ट फल) प्राप्त नहीं होता है।

विद्यते वाऽर्थान्तरत्वाद्यमस्य ॥१-३१॥

सूत्रार्थ- अथवा यमों का पालन होने पर दूसरे भेद रूप परिणाम की प्राप्ति तो हो ही जाती है। अर्थात नियमों का पालनकर्ता स्वयं फल प्राप्त कर लेता है अथवा यमों का पालन कर्ता से भिन्न अन्य को फल प्राप्त हो जाता है।

असति चाभावात् ॥१-३२॥

सूत्रार्थ- और किसी एक (पवित्र भोजन तथा यम नियम) के न रहते हुए भी अभ्युदय (अभीष्ट फल) की प्राप्ति नहीं होती है।

सुखाद्रागः ॥१-३३॥

सूत्रार्थ- राग (आकर्षण) सुखजन्य होता है।

तन्मयत्वाच्च ॥१-३४॥

सूत्रार्थ- और तन्मयता होने से राग अधिक होता है।

न तृप्तेः वा तृप्तेः ॥१-३५॥

सूत्रार्थ- तृप्त होने में अथवा तृप्त न होने में राग होता है।

अदृष्टाच्च ॥१-३६॥

सूत्रार्थ- और अदृष्ट (कर्म) से अथवा विषय पदार्थ के दिखायी न देने से भी राग होता है।

एतेन द्वेषो व्याख्यातः ॥१-३७॥

सूत्रार्थ- इसी प्रकार द्वेष का वर्णन है।

जातिविशेषाच्च रागद्वेषः ॥१-३८॥

सूत्रार्थ- और जाति भेद से भी राग द्वेष बताये जाते हैं।

इच्छाद्वेषपूर्विका धर्माधर्मयोः प्रवृत्तिः ॥१-३९॥

सूत्रार्थ- धर्म तथा अधर्म दोनों की प्रवृत्ति (आरम्भ) इच्छा तथा द्वेष के अनुसार होना बताया जाता है।

तत्संयोगो विभागश्च ॥१-४०॥

सूत्रार्थ- उनका वह संयोग (कम्पोजिशन) जन्म कहलाता है और वह विभाग (डीकम्पोजिशन) मरण कहलाता है।

आत्मकर्मसु मोक्षो व्याख्यातः ॥१-४१॥

सूत्रार्थ- आत्मा के कर्मों में मोक्ष का वर्णन है अथवा बताया गया है। इस प्रकार सनातन वेद के अन्तर्गत समस्त वेदों की व्याख्याओं के अनुसार धर्म की विभिन्न व्याख्यायें बतायी गयी हैं, जिसके अनुसार विहित कर्मों का करना ही धर्म कहा गया है और धर्म की वैशेषिक व्याख्या अलग है।

मण्डल-2

अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः ॥२-१॥

सूत्रार्थ- धर्म की अनेक व्याख्याओं का वैशेषिक स्वरूप समझाने के बाद महर्षि गार्ग्य प्रसिद्ध (अपर नाम) कणाद जी कहते हैं कि अब धर्म की व्याख्या करेंगे। धर्म का अभिप्राय मीमांसा आदि मतों से भिन्न है और समस्त को समायोजित करने से भी वैशेषिक है।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ॥२-२॥

सूत्रार्थ- निःश्रेयस (समस्त भौतिक सुख, आध्यात्मिक आनन्द, मोक्ष, मुक्ति,

निर्वाण, अपवर्ग) स्वरूप अभीष्ट की प्राप्ति जिससे होती है, उसको ही धर्म कहा जाता है। स्पष्टतः अभ्युदय शब्द से विशेषण रूप अभीष्ट, नियत इच्छा के अन्तर्गत निश्चित मांग अभिप्रेत है और निःश्रेयस से फल, परिणाम, रिजल्ट अभिप्रेत है। अतः अभीष्ट का फल स्वरूप, जिससे होता है, धर्म कहलाता है।

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ॥२-३॥

सूत्रार्थ- प्रत्येक सम्प्रदाय के श्रद्धेय (निराकार ब्रह्म, अल्लाह आदि अथवा ईश्वर, भगवान, राम, कृष्ण, हजरत ईसा, हजरत मूसा, हजरत मौहम्मद, बुद्ध महावीर, ब्रहस्पति आदि महापुरुष) के वचन होने के कारण वेद वर्णित धर्म प्रमाणित माने जाते हैं अथवा धर्म के अभिव्यक्त (शब्द रूप में प्रकट) होने से वेद वर्णन प्रमाणित माने जाते हैं। अर्थात धर्म का अर्थ धारण करना है। श्रद्धेयगण के द्वारा जो पूर्व काल में प्रत्यक्ष किया गया है अथवा धारण किया गया है, वह धर्म कहलाता है और उसका प्रकट रूप होने (शब्द होने) से वेद (पुस्तक) का वर्णन धर्म कहा जाता है अथवा वेद से धर्म प्रमाणित होता है।

प्रसिद्धिः विशेषाच्च ॥२-४॥

सूत्रार्थ- ज्ञान की विशेषता से (अलग अलग होने से) भी धर्म प्रमाणित होते हैं। धारण करने से धर्म कहलाता है। इसप्रकार वेद धर्म है और जिसमें वेद है, वह धर्म है। इसी प्रकार सम्प्रदाय आदि भी धर्म कहलाते हैं। कर्म का करना अथवा कर्म का धारण करना धर्म है। किसी श्रद्धेय के धर्म के अनुरूप होने से विहित (साम्प्रदायिक ग्रन्थों के द्वारा बताया गया) कर्म का करना धर्म कहलाता है।

तथा कणाद् पदार्थमिति ॥२-५॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार कण से उत्पन्न होने से धर्म ही पदार्थ कहलाता है, क्योंकि पदार्थ का 'अर्थ' धर्म है, जिसके कारण वह धर्म का पदार्थ है। जिसका पद से ज्ञान होता है, जिससे पद प्रकट होता है, जिससे पद का ज्ञान होता है, जिससे पद उत्पन्न होता है, जो पद का कारण है, वह धर्मपदार्थ है। इसीलिये धर्म से उत्पत्ति कही जाती है, क्योंकि जगत रूप कार्य तथा उसका कारण रूप धर्म दोनों ही धर्म है और पदार्थ है। कार्य को धारण करने से कारण तथा कारण को धारण करने से कार्य धर्म कहलाते हैं। धर्म भेद ही पदार्थ कहलाते हैं। जगत का कारण केवल परमाणु रूप ही नहीं है। परमाणु तो जगत का एक इकाई रूप कण है। एक मत के अनुसार अणुरूप परमाणु है। एक मत के

अनुसार त्रसरेणु रूप ही परमाणु है। एक मत के अनुसार **प्रकृति रूप परमाणु** है परन्तु महर्षि के अनुसार परमाणु भी कणों से बना है और अन्तिम कण ही विशेष धर्म वाला कण है, जो प्रकट होने से पदार्थ कहलाता है। शास्त्र अभिमत के लिए व्याख्या अपेक्षित है।

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मादयः पदार्थाः ॥२-६॥

सूत्रार्थ- धर्म भेद से उत्पन्न द्रव्य, गुण तथा कर्म आदि धर्म ही पदार्थ कहलाते हैं। गुण तथा धर्म को प्रधान रूप द्रव्य में अन्तर्निहित बताने के लिये ही द्रव्य तथा गुण का नाम कहा गया है, क्योंकि जगत को द्रव्यमय बताना अभिप्रेत है। पदार्थ संख्या विवाद नहीं है। अन्य मतों के अनुसार यथार्थ तथा प्रकटार्थ की परिभाषा में अन्तर होने से ही पदार्थ एवं संख्या का विवाद है जैसे न्यायमत से व्यक्ति, आकृति तथा जांति को पदार्थ कहते हैं।

पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥२-७॥

सूत्रार्थ- पदार्थों की साधर्मता तथा विधर्मता से प्राप्त तत्व (एकीकृत अथवा सारांश अथवा एक होना) ज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। वैशेषिक शास्त्र के अतिरिक्त शांख्यायन आरण्यक, कौशितकि उपनिषद, हिरण्यकेशी श्रौतसूत्र, हिरण्यकेशी धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र, महर्षि पाणिनी की अष्टाध्यायी तथा न्याय शास्त्र में भी विभिन्न अभिप्राय सहित निःश्रेयस शब्द मिलता है, जो वैशेषिक शास्त्र के पश्चातवर्ती है परन्तु ऋक् आदि में भी नहीं मिलता है। यद्यपि अधिकांशत इसका अभिप्राय 'मोक्ष' माना जाता है, परन्तु उनसे भी प्राचीन प्रयोग होने से इस वैशेषिकशब्द का अभिप्राय भी वैशेषिक है।

क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥२-८॥

सूत्रार्थ- गुण का क्रिया रूप होना (गुणयुक्त तथा क्रियायुक्त होना, गुण युक्त अथवा क्रिया युक्त होना) उत्पत्ति में समवायि कारण (समवाय सम्बन्ध बनाकर) होना, इस प्रकार द्रव्य की पहचान के लिये लक्षण कहलाते हैं।

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥२-६॥

सूत्रार्थ- पृथिवी, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा तथा मन उपर्युक्त लक्षण के अनुरूप होने से द्रव्य कहलाते हैं।

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ॥२-१०॥

सूत्रार्थ- द्रव्य का आश्रित ही रहना, गुण रहित होना, द्रव्यों के संयोगों तथा विभागों की उत्पत्ति में अनपेक्ष अकारण होना गुण नामक पदार्थ का लक्षण है।

रूपरसगन्धस्पर्शाः सङ्ख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्च गुणाः ॥२-११॥

सूत्रार्थ- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, प्रथकता, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख तथा प्रयत्न उपर्युक्त लक्षण के अनुसार गुण कहलाते हैं। शब्द आदि अलग प्रकार के गुण बताना अभिप्रेत है।

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ॥२-१२॥

सूत्रार्थ- एक द्रव्य में ही रहना, गुण रहित होना, संयोग तथा विभागों का अनपेक्ष कारण होना कर्म नामक धर्मपदार्थ के लक्षण होते हैं।

उत्क्षेपणमपक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ॥२-१३॥

सूत्रार्थ- उत्क्षेपण (ऊपर की ओर स्थान परिवर्तन), अपक्षेपण (नीचे की ओर स्थान परिवर्तन), आकुंचन (नियत की ओर स्थान परिवर्तन) प्रसारण (नियत से स्थान परिवर्तन) तथा गमन (अन्य प्रकार से स्थान परिवर्तन) कर्म नामक धर्म पदार्थ कहलाते हैं।

अनुवृत्ति-साधर्म्यं सामान्यम् ॥२-१४॥

सूत्रार्थ- एक के बाद दूसरी प्रतीति की साधर्मता होना सामान्य नामक धर्म पदार्थ कहलाता है।

अनुवृत्ते वैधर्म्यं सामान्य-विशेष ॥२-१५॥

सूत्रार्थ- प्रतीतियों की साधर्मता रहते हुये प्रतीतियों में विधर्मता होना सामान्य का विशेष (अपर सामान्य) धर्मपदार्थ कहलाता है अर्थात पर सामान्य तथा अपर सामान्य प्रतीतियों के कारण है।

समान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् ॥२-१६॥

सूत्रार्थ- यह सामान्य है, यह विशेष (अलग) है, ऐसी प्रतीति ज्ञान की आवश्यकता होती है।

भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्त्वात् सामान्यमेव ॥२-१७॥

सूत्रार्थ- एक के बाद प्रतीतियों की साधर्मता ही कारण होने से सत्ता नामक जाति धर्मपदार्थ केवल सामान्य (पर सामान्य) ही होता है।

द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वं च सामान्यानि विशेषाश्च ॥२-१८॥

सूत्रार्थ-द्रव्यता, गुणता तथा कर्मता सामान्य रहते हुये विशेष (अपर सामान्य) भी होते हैं। अर्थात द्रव्यता आदि प्रतीतियाँ दोनों प्रकार की होती हैं।

अन्यत्राऽन्त्येभ्यो विशिषेभ्यः ॥२-१९॥

सूत्रार्थ- इनके अतिरिक्त अन्तिम कहे जाने वाले तथा विशेष नामक धर्म पदार्थ केवल सामान्य विशेष (अपर सामान्य) ही होते हैं अर्थात सामान्य (पर सामान्य) नहीं होते हैं इस प्रकार पर तथा अपर सामान्य के आधार पर धर्म पदार्थों के तीन विभाग बताना अभिप्रेत है।

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥२-२०॥

सूत्रार्थ- द्रव्य, गुण तथा कर्मों में 'यह है' ऐसी प्रतीति जिससे होती है, वह सत्ता नामक धर्म पदार्थ है।

द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता ॥२-२१॥

सूत्रार्थ- द्रव्य, गुण तथा कर्म से अलग दूसरा पदार्थ सत्ता कहलाता है।

एकद्रव्यत्वान्न द्रव्यम् ॥२-२२॥

सूत्रार्थ- द्रव्य में एक द्रव्यता होने से सत्ता द्रव्य नहीं होती है।

गुणकर्मसु च भावान्न कर्म न गुणः ॥२-२३॥

सूत्रार्थ- गुण तथा कर्मों में भी विद्यमान होने से सत्ता न कर्म है, न गुण है और न द्रव्य है।

सामान्यविशेषाभावेन च ॥२-२४॥

सूत्रार्थ- और सामान्य विशेष (अपर सामान्य अथवा सामान्य भेद) न होने से भी सत्ता न द्रव्य है, न गुण है तथा न कर्म है।

सदिति लिङ्गविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चैको भावः ॥२-२५॥

सूत्रार्थ- 'यह है' ऐसा लिंग अलग होने से तथा अलग लिंग न होने से भी सत्ता एक होती है।

अनेकद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यत्वमुक्तम् ॥२-२६॥

सूत्रार्थ- एक से अधिक द्रव्यों में आश्रित होने वाला पदार्थ द्रव्यता जाति कहलाती है।

एकद्रव्यवत्त्वेऽपि द्रव्यत्वमुक्तम् ॥२-२७॥

सूत्रार्थ- एक द्रव्य स्वरूप होने से भी द्रव्यता जाति कहलाती है।

सामान्यविशेषाभावेन च ॥२-२८॥

सूत्रार्थ- और सामान्य का भेद न होने से भी द्रव्यता कहलाती है।

तथा गुणेषु भावाद् गुणत्वमुक्तम् ॥२-२९॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार गुणों में होने वाला पदार्थ गुणता जाति कहलाती है।

सामान्यविशेषाभावेन च ॥२-३०॥

सूत्रार्थ- और सामान्य का भेद न होने से भी गुणता कहलाती है।

तथा कर्मसु भावात् कर्मत्वमुक्तम् ॥२-३१॥

सूत्रार्थ- कर्मों में उसी प्रकार होने वाला पदार्थ कर्मता जाति कहलाती है।

सामान्यविशेषाभावेन च ॥२-३२॥

सूत्रार्थ- और सामान्य का भेद न होने से भी कर्मता कहलाती है।

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः ॥२-३३॥

सूत्रार्थ- 'इसमें यह सन्निहित है', जिससे कार्य तथा कारण स्वरूप पदार्थों में ऐसी प्रतीति होती है, वह समवाय नामक धर्मपदार्थ है।

द्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वप्रतिषेधो भावेन व्याख्यातः ॥२-३४॥

सूत्रार्थ- द्रव्यता, गुणता तथा कर्मता का विपरीत होना सत्ता के समान वर्णन है।

तत्त्वम्भावेन ॥२-३४॥

सूत्रार्थ- सत्ता धर्म पदार्थ के समान समवाय का भी एक होना है।

मण्डल-3

असतः क्रियागुणव्यपदेशाभावादर्थान्तरम् ॥३-१॥

सूत्रार्थ- द्रव्य में क्रिया तथा गुण का व्यपदेश (प्रयोग अथवा व्यवहार) के न होने से द्रव्य के अतिरिक्त दूसरा पदार्थ 'नहीं है' (विद्यमान नहीं है अथवा अभाव) नामक धर्म पदार्थ है जो अभाव कहलाता है।

क्रियागुणव्यपदेशाभावात् प्रागसत् ॥३-२॥

सूत्रार्थ- उत्पत्ति से पूर्व द्रव्य में क्रिया तथा गुण का व्यपदेश न होना पूर्व कालिक न होना है। जो प्रागभाव कहलाता है।

सदसत् ॥३-३॥

सूत्रार्थ- उत्पत्ति के बाद कार्य रूप द्रव्य का विद्यमान होना और इससे उत्पन्न दूसरे कार्य रूप में उसका न होना है, ध्वंसाभाव कहलाता है। जैसे घड़े का टूटकर टुकड़ा रूप होने से घड़े का न होना।

सच्चासत् ॥३-४॥

सूत्राथ- दो अलग अलग द्रव्यों का विद्यमान होना और परस्पर एक दूसरे में परस्पर एक दूसरे का विद्यमान न होना है, अन्योन्याभाव कहलाता है। जैसे गाय तथा घड़ा दोनों के विद्यमान होते हुए परस्पर एक दूसरे में परस्पर एक दूसरे का व्यपदेश न होना।

यच्चान्यदसदतस्तदसत्॥३-५॥

सूत्रार्थ- ऐसे धर्मपदार्थ, जिनको पूर्व सूत्रों में अविद्यमान होना बताया गया है, उनके अतिरिक्त व्यपदेश न होने से न होना (अभाव) होता है, वह भी न होना (अभाव) होता है, जिसके अन्तर्गत अत्यन्ताभाव बताया गया है। अर्थात जो न कभी उत्पन्न होगा अर्थात सर्वकालिक सर्वतः अभाव को अत्यन्तिक कहा जाता है, परन्तु विद्यमान का ऐसा अभाव, जो पुनः उत्पन्न नहीं होता है, अनुत्पन्नाभाव है। द्रव्यों में पदार्थों का अभाव पदार्थाभाव (इटर्नल) तथा प्रतीति का अभाव प्रतीत्याभाव भी अभाव होते हैं।

असदिति भूतप्रत्यक्षाभावात् भूतस्मृतेर्विरोधिप्रत्यक्षवत् ॥३-६॥

सूत्रार्थ- भूतकाल में प्रत्यक्ष पदार्थ का अभाव होने से भूत के प्रत्यक्ष की स्मृति होने पर उसके लिये 'विद्यमान नहीं है' इस प्रकार का ज्ञान विरोधि पदार्थ के प्रत्यक्ष के समान होता है।

तथाऽभावे भावप्रत्यक्षत्वाच्च ॥३-७॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार किसी विद्यमान पदार्थ का अविद्यमान होने पर विद्यमान की प्रत्यक्षता होने से ज्ञान होता है।

एतेनाघटोऽगौरधर्मश्च व्याख्यातः ॥३-८॥

सूत्रार्थ- इसी प्रकार घड़ा नहीं है, गाय नहीं है तथा धर्म नहीं है, में उन पदार्थों से रहित होने का अथवा उनके न होने का अथवा उनका अभाव होने का ज्ञान हो जाता है।

अभूतं नास्तीत्यनर्थान्तरम् ॥३-९॥

सूत्रार्थ- भूतकाल में न होना अथवा भूतरहित होना अथवा पहले न होना तथा विद्यमान नहीं है, इस प्रकार दोनों कथनों से अभिप्रेत पदार्थ अलग-अलग नहीं होते हैं अर्थात एक ही पदार्थ होते हैं। अर्थात जो कल नहीं था और आज भी नहीं है अर्थात अनुत्पन्न ही है।

नास्ति घटो गेहे इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः ॥३-१०॥

सूत्रार्थ- 'घर में घड़ा विद्यमान नहीं है' इस प्रकार के कथन से घड़ा विद्यमान रहते हुये घड़े का घर से सम्पर्क होने का प्रतिषेध (विरोध, अस्वीकृति) होता है अर्थात घड़े का अभाव बताना अभिप्रेत नहीं है, अपितु उसका घर से सम्पर्क का न होना है।

नास्त्यन्यश्चन्द्रमा इति सामान्याच्चन्द्रमसः प्रतिषेधः ॥३-११॥

सूत्रार्थ- 'अन्य कोई दूसरा चन्द्रमा नहीं है' इस कथन में सामान्य रूप होने से

अन्य चन्द्रमता की अस्वीकृति है अर्थात इस चन्द्रमा के समान कोई अन्य कोई ऐसा चन्द्रमा नहीं है अथवा ऐसा चन्द्रमा एक ही है।

सदसतो वैधर्म्यात् कार्ये सदसत्ता न ॥३-१२॥

सूत्रार्थ- सत् (विद्यमान है), असत् (विद्यमान नहीं है), दोनों में विधर्मता होने से किसी कार्य स्वरूप में पदार्थ में उसके कारण स्वरूप पदार्थ की सत्ता का न होना (अभाव) नहीं होता है अर्थात कार्य रूप जगत पदार्थ को असत् कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि उसमें उसका कारण स्वरूप धर्म पदार्थ समवेत नहीं है। कारण रूप ब्रह्म की ईश्वर में सत्ता की स्पष्ट मान्यता है।

कारणाभावात् कार्याभावः ॥३-१३॥

सूत्रार्थ- परन्तु कारण के न होने से कार्य नहीं होता है।

न तु कार्याभावात् कारणाभावः ॥३-१४॥

सूत्रार्थ- कार्य स्वरूप जगत का ही अभाव होता है, क्योंकि कारण स्वरूप का अभाव नहीं होता है अथवा कार्य के अभाव हो जाने से कारण का अभाव नहीं होता है।

द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्याद् भाभावस्तमः ॥३-१५॥

सूत्रार्थ- अभाव भेद को समझाते हुए महर्षि गार्ग्य प्रसिद्ध कणाद कहते हैं कि अन्धकार भी अभाव का एक भेद है। प्रकाश (चमक) का अभाव ही अन्धकार होत है, क्योंकि द्रव्य, गुण तथा कर्म की उपलब्धि तथा अन्धकार की उपलब्धि में भिन्नता होती है अथवा इनकी अन्धकार में विधर्मता होती है।

तेजसो द्रव्यान्तरेणावरणाच्च ॥३-१६॥

सूत्रार्थ- अन्य दूसरे द्रव्यों के द्वारा तेज को आवरित जो जाने (छिपाने) से भी उत्पन्न अभाव अन्धकार होता है, जो न द्रव्य है, न गुण है, न कर्म है।

मण्डल-4

कारणमिति द्रव्ये कार्य्यसमवायात् ॥४-१॥

सूत्रार्थ- "कारण है" द्रव्य में ऐसा व्यवहार, प्रयोग अथवा ज्ञान होता है, क्योंकि कार्य पदार्थों का द्रव्य रूप कारण पदार्थ से समवाय सम्बन्ध होता है अर्थात समवाय सम्बन्ध से कार्य का आधार होना समवायि कारण कहा जाता है।

संयोगाद्वा ॥४-२॥

सूत्रार्थ- अथवा क्योंकि संयोग सम्बन्ध होता है, इसलिये ऐसा ज्ञान अथवा व्यवहार होता है कि द्रव्य कारण है। अर्थात यह समवायि कारण नहीं होता है।

कारणे समवायात् कर्माणि ॥४-३॥

सूत्रार्थ- कारण रूप द्रव्य में कर्म का समवाय सम्बन्ध होने से कर्मों में ऐसा व्यवहार अथवा ज्ञान होता है कि कर्म कारण है, जो समवायि कारण नहीं कहलाता है।

तथा रूपे कारणैकार्थसमवायाच्च ॥४-४॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार कारण रूप द्रव्य के एकार्थ (एक भाग) से रूप नामक गुण धर्म पदार्थ का समवाय होने से भी ऐसा व्यवहार अथवा ज्ञान होता है कि रूप कारण है। परन्तु समवायि कारण नहीं कहा जाता है।

कारणसमवायात् संयोगः पटस्य ॥४-५॥

सूत्रार्थ- कारण रूप (तन्तु) में संयोग नामक गुण का समवाय होने से तन्तु में उत्पन्न संयोग नामक गुण में ऐसा व्यवहार होता है कि संयोग गुण वस्त्र का कारण है परन्तु समवायि कारण नहीं कहा जाता है।

कारणकारणसमवायाच्च ॥४-६॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार कारण रूप पदार्थ का कारण रूप पदार्थ में समवाय होने से भी ऐसा व्यवहार होता है। अर्थात कारण के कारण में संयोग होना।

कारणाकारणसमवायाच्च ॥४-७॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार कारण रूप पदार्थ का अकारण रूप पदार्थ में समवाय होने से भी ऐसा ज्ञान होता है अर्थात कार्य का कारण तथा अकारण रूप दोनों पदार्थों में संयोग होने से ज्ञान होता है।

संयुक्तसमवायादग्नेर्वैशेषिकम् ॥४-८॥

सूत्रार्थ- कार्य तथा कारण दोनों में संयुक्त रूप से समवाय सम्बन्ध होने के कारण अग्नि में ऐसा व्यवहार होता है कि आम आदि के [illegible] का कारण अग्नि है। दोनों स्वरूप में समवाय होने से वैशेषिक कारण (समवायि तथा असमवायि) दोनों से अलग है, जो उष्णस्पर्श नामक गुण है। यह निमित्त (उत्प्रेरक) कहलाता है।

मण्डल-5

सदनित्यं द्रव्यवत्कार्यं कारणं सामान्यविशेषवदिति द्रव्यगुणकर्मणामविशेषः ॥५-१॥

सूत्रार्थ- विद्यमान होना, अनित्य होना, द्रव्य के रूप में कार्य का प्रकट करना, उत्पत्ति में कारण होना अथवा कारण स्वरूप होना, सामान्य रहते हुये विशेष स्वरूप में होना अथवा पर सामान्य तथा अपर सामान्य दोनों रूप में प्रतीत

होना, द्रव्य गुण तथा कर्मों का 'विशेष' न होना अथवा सामान्य होना अथवा अलग अलग न होना तीन पदार्थों द्रव्य गुण तथा कर्म का साधर्म है।

द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम् ॥५-२॥

सूत्रार्थ- अपनी जाति (द्रव्य से द्रव्य, गुण से गुण) के धर्म पदार्थों को उत्पन्न करना द्रव्य तथा गुण दोनों की साधर्मता है।

द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते ॥५-३॥

सूत्रार्थ- एक से अधिक द्रव्यों से द्रव्य भिन्न (गुण कर्म) धर्म पदार्थों की उत्पत्ति होना द्रव्यों की साधर्मता है।

गुणाश्च गुणान्तरम् ॥५-४॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार गुण से भिन्न (द्रव्य तथा कर्म) का एक से अधिक गुणों से उत्पन्न होना गुणों की साधर्मता है।

कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते ॥५-५॥

सूत्रार्थ- कर्म से कर्म की उत्पत्ति न होना कर्मों की साधर्मता है।

न द्रव्यं कार्यं कारणं च वधति ॥५-६॥

सूत्रार्थ- कोई भी द्रव्य अपने कार्य तथा कारण स्वरूप द्रव्य को नष्ट नहीं करता है, यह द्रव्यों की साधर्मता है।

उभयथा गुणाः ॥५-७॥

सूत्रार्थ- गुण धर्मपदार्थ दोनों प्रकार के होते हैं, यह गुणों की साधर्मता है।

कार्यविरोधि कर्म ॥५-८॥

सूत्रार्थ- कर्म अपने कार्य के विपरीत होते हैं अथंवा नष्ट हो जाते हैं, यह कर्मों की साधर्मता है।

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥५-६॥

सूत्रार्थ- द्रव्य, गुण तथा कर्मों की उत्पत्ति में द्रव्य सामान्य (तीनों का) कारण होता है, यह द्रव्यों की साधर्मता है।

तथा गुणः ॥५-१०॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार द्रव्य, गुण तथा कर्म तीनों की उत्पत्ति में गुण सामान्य कारण है। यह गुणों की साधर्मता है।

संयोगविभागवेगानां कर्म कारणं समानम् ॥५-११॥

सूत्रार्थ- संयोग, विभाग तथा वेग तीनों में कर्म समान रूप से कारण होता है अर्थात सामान्य कारण नहीं होता है, यह कर्मों की साधर्मता है।

न द्रव्याणां कर्म व्यतिरेकात् ॥५-१२॥

सूत्रार्थ- उत्पत्ति के समय अभाव होने के कारण समग्र द्रव्यों की उत्पत्ति में कर्म कारण नहीं होता है, न सामान्य कारण, न समान कारण। यह कर्मों की साधर्मता है।

गुणवैधर्म्यान्न कर्म ॥५-१३॥

सूत्रार्थ- गुण की विधर्मता होने से कर्म का कारण होना गुण के समान सामान्य नहीं है, यह कर्मों की साधर्मता है।

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ॥५-१४॥

सूत्रार्थ- एक से अधिक द्रव्यों से एक कार्य रूप द्रव्य की उत्पत्ति होना द्रव्यों की साधर्मता है।

तथा गुणाः ॥५-१५॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार एक से अधिक गुणों के द्वारा एक कार्य रूप गुण की उत्पत्ति होना गुणों की साधर्मता है।

गुणवैधर्म्यान्न कर्मणां कर्म ॥५-१६॥

सूत्रार्थ- गुण की विधर्मता होने से एक से अधिक कर्मों से एक कार्य स्वरूप कर्म की उत्पत्ति न होना कर्मों की साधर्मता है।

द्वित्वप्रभृतयः संख्याः पृथक्त्वसंयोगविभागाश्च ॥५-१७॥

सूत्रार्थ- एक, दो, तीन आदि संख्यायें, प्रथकता, संयोग तथा विभाग की उत्पत्ति एक से अधिक द्रव्यों से होती है।

असमवायात् सामान्यकार्यं कर्म न विद्यते ॥५-१८॥

सूत्रार्थ- समवाय रहित होने से एक से अधिक कर्मों के द्वारा मिलकर एक (सामान्य) कार्यरूप कर्म की उत्पत्ति नहीं होती है। यह कर्मों की साधर्मता है।

संयोगानां द्रव्यम् ॥५-१९॥

सूत्रार्थ- अनेक संयोगों के मिलने से एक द्रव्य की उत्पत्ति होना साधर्मता है।

रूपाणां रूपम् ॥५-२०॥

सूत्रार्थ- रूपों के मिलने से एक रूप का उत्पन्न होना साधर्मता है।

गुरुत्वप्रयत्नसंयोगानामुत्क्षेपणम् ॥५-२१॥

सूत्रार्थ- गुरुत्व, प्रयत्न तथा संयोग तीनों के मिलने से एक कार्य रूप उत्क्षेपण कर्म उत्पन्न होना साधर्मता है।

संयोगविभागाश्च कर्मणाम् ॥५-२२॥

सूत्रार्थ- संयोग तथा विभाग भी एक से अधिक कर्मों के मिलने से उत्पन्न होते हैं।

कारणसामान्ये द्रव्यकर्मणां कर्माकारणमुक्तम् ॥५-२३॥

सूत्रार्थ- उत्पत्ति में द्रव्य तथा कर्म दोनों सामान्य कारण होते हैं, इसलिये कर्म को कारण नहीं कहा जाता है, परन्तु कर्म भी कारण होता है।

मण्डल-6

उक्ता गुणाः ॥६-१॥

सूत्रार्थ- मण्डल दो में बताये गये 17 गुणों से ही वैशेषिक शास्त्र का अभिप्राय है। शेष गुण है, परन्तु इस वर्ग के गुणों के समान नहीं है।

गुणलक्षणं चोक्तम् ॥६-२॥

सूत्रार्थ- और गुण को पहचानने के लिये प्रतीक (बोधक अथवा प्रकट धर्म) भी जो बताये गये हैं, वही कहे जाते हैं।

इदमेवं गुणमिदमेवं गुणमिति चोक्तम् ॥६-३॥

सूत्रार्थ- 'यह गुण है' और यह गुण होता है, इस प्रकार से इनको ही कहा जाता है अर्थात शब्द आदि अलग प्रकार के गुण होते हैं।

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वादनित्याः ॥६-४॥

सूत्रार्थ- रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श गुण पृथिवी आदि धर्मपदार्थों की अनित्यता के कारण अनित्य बताये जाते हैं।

अग्नि संयोगाच्च ॥६-५॥

सूत्रार्थ- और अग्नि का संयोग होने से भी गुण अनित्य कहा जाता है।

गुणान्तरप्रादुर्भावाच्च ॥६-६॥

सूत्रार्थ- और अन्य गुण प्रकट होने के कारण भी गुण अनित्य कहा जाता है।

एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥६-७॥

सूत्रार्थ-इसी प्रकार नित्य द्रव्यों में रहने वाले गुणों की नित्यता बतायी जाती है।

अप्सु तेजसि वायौ च नित्या द्रव्यनित्यत्वात् ॥६-८॥

सूत्रार्थ- द्रव्य की नित्यता होने के कारण जल, अग्नि तथा वायु नामक द्रव्यों के गुणों की नित्यता बतायी जाती है।

अनित्येष्वनित्या द्रव्यानित्यत्वात् ॥६-६॥

सूत्रार्थ- द्रव्य की अनित्यता होने के कारण अनित्य द्रव्यों के गुणों को अनित्य कहा जाता है। इस प्रकार कारण स्वरूप द्रव्यों के गुण नित्य तथा कार्य स्वरूप द्रव्यों के गुण अनित्य बताये जाते हैं।

कारणगुणपूर्वकाः पृथिव्यां पाकजाश्च ॥६-१०॥

सूत्रार्थ- कार्यस्वरूप द्रव्यों के गुण कारणस्वरूप द्रव्यों के गुण के अनुरूप होते हैं। पृथिवी में भी ऐसा होने से कारण तथा कार्यस्वरूप पृथिवी में गुण पाकज (अग्नि के संयोग से उत्पन्न) होते हैं।

अप्सु तेजसि वायौ च कारणगुणपूर्वकाः पाकजाः न विद्यन्ते ॥६-११॥

सूत्रार्थ- जल, अग्नि तथा वायु नामक द्रव्यों के गुण कारणस्वरूप द्रव्यों के गुण के अनुरूप होते हैं। कारणस्वरूप में अग्नि का संयोग न होने के कारण कार्यस्वरूप द्रव्यों के गुण पाकज नहीं होते हैं।

अगुणवतो द्रव्यस्य गुणान्तरारम्भात् कर्मगुणा अगुणाः ॥६-१२॥

सूत्रार्थ- द्रव्य का गुण भिन्न उत्पत्ति कर्म होने के कारण गुणरहित सदृश (रूप) होता है। कर्मस्वरूप गुण गुण नहीं होते हैं। अर्थात गुण में दूसरा गुण नहीं होता है, क्योंकि पूर्व गुण तो नष्ट हो जाता है।

एकद्रव्यत्त्वाच्च ॥६-१३॥

सूत्रार्थ- और एक द्रव्यता अथवा एक द्रव्य आधारिता होने के कारण भी पाकज क्रिया होती है अर्थात पाकज क्रिया के एक से अधिक कारण हैं।

एतेन पाकजाः व्याख्याताः ॥६-१४॥

सूत्रार्थ- इससे पाकज क्रिया स्पष्ट हो जाती है, जिसको पीलू (परमाणु, कारण रूप से) कहा जाता है और अन्य मत से पिठर पाक नामक भिन्न बतायी गयी प्रक्रिया का भी यही अभिप्राय है, परन्तु अलग दर्शाने के लिए अलग व्याख्या की गयी है।

अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धी नित्ये व्याख्याते ॥६-१५॥

सूत्रार्थ- अणुपरिमाणी तथा महत् परिमाणी का प्रत्यक्ष होने तथा न होने के कारण परिमाण नामक गुण की नित्यता का निर्धारण होता है।

कारणबहुत्वात् कारणमहत्त्वात् प्रचयविशेषाच्च महत् ॥६-१६॥

सूत्रार्थ- कारणों की अधिकता होने से, कारण अधिक (बड़ा) होने से तथा अलग प्रकार का प्रचय (फुलाव) होने से महत् परिमाण की उत्पत्ति होती है।

अतो विपरीतमणु ॥६-१७॥

सूत्रार्थ- और इससे विपरीत होना अणु परिमाण की उत्पत्ति होती है।

अणु महदिति तस्मिन् विशेषभावात् विशेषाभावाच्च ॥६-१८॥

सूत्रार्थ- और अणु (सूक्ष्म) है अथवा महत् (स्थूल) है, इनमें दोनों अलग प्रकार

का होने के कारण तथा न होने के कारण हैं अर्थात परिमाणयुक्त पदार्थों में इस प्रकार होना तुलनात्मक होता है।

एककालत्वात् ॥६-१९॥

सूत्रार्थ- और एक समय में होने के कारण ऐसा तुलनात्मक ज्ञान होता है।

दृष्टान्ताच्च ॥६-२०॥

सूत्रार्थ- और दृष्टान्तों के कारण भी ऐसा तुलनात्मक ज्ञान होता है।

अणुत्वमहत्त्वयोरणुत्वमहत्त्वाभावः कर्मगुणैर्व्याख्यातः ॥६-२१॥

सूत्रार्थ- धर्मपदार्थों की सूक्ष्मता में सूक्ष्मता का तथा महत्त्व में महत्त्व का न होना कर्म तथा गुण के समान बताया गया है।

कर्मभिः कर्माणि व्याख्याताः ॥६-२२॥

सूत्रार्थ- कर्मों में कर्म का न होना बताया गया है।

तथा गुणैर्गुणा व्याख्याताः ॥६-२३॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार गुणों में गुण का न होना बताया गया है।

अणुत्वमहत्त्वाभ्यां कर्मगुणाश्च व्याख्याताः ॥६-२४॥

सूत्रार्थ- अणुता तथा महत्ता दोनों के समान कर्म तथा गुण की व्याख्या की गयी है।

एतेन दीर्घत्वह्रस्वत्वे व्याख्याते ॥६-२५॥

सूत्रार्थ- इसी प्रकार दीर्घता तथा हृस्वता को समझ लिया जाता है।

अनित्येऽनित्यम् ॥६-२६॥

सूत्रार्थ- अनित्य धर्मपदार्थों में रहने वाले परिमाण भी अनित्य होते हैं।

नित्ये नित्यम् ॥६-२७॥

सूत्रार्थ- नित्य धर्मपदार्थों में रहने वाले परिमाण भी नित्य होते हैं।

नित्यं परिमण्डलम् ॥६-२८॥

सूत्रार्थ- परिमण्डल (गोलाकार) परिमाण नित्य होता है अथवा नित्य परिमाण वाला गोलाकार होता है। अर्थात महर्षि गार्ग्य उर्फ कणाद शून्य के जनक हैं इसका ही उपयोग गणना करने में, शून्यवाद समझने में, अन्तिम कारण (परमात्मा) आदि को समझने में पश्चातवर्ती विद्वानों के द्वारा किया गया है। अर्थात सबसे छोटा तथा सबसे बड़ा आकार शून्य ही है।

अविद्या च विद्यालिङ्गम् ॥६-२९॥

सूत्रार्थ- और अविद्या भी विद्या का अनुमान लगाने के लिये साधक (बोधक) होता है। अर्थात यदि अविद्या है, तो विद्या की भी सत्ता होती है।

विभवान्महानाकाशः ॥६-३०॥

सूत्रार्थ- विभु (व्यापक) होने से आकाश का परिमाण महान (परम महत्) कहलाता है।

तथा चात्मेति ॥६-३१॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार विभु होने से आत्मा आदि को व्यापक कहा जाता है।

तदभावादणु मनः ॥६-३२॥

सूत्रार्थ- उस (व्यापकता) के न होने से मन का परिमाण अणु कहलाता है।

गुणैर्दिग्व्याख्याता ॥६-३३॥

सूत्रार्थ- गुणों से युक्त होने के कारण दिशा नामक धर्मपदार्थ की गुण के समान व्याख्या है।

कारणेन कालः ॥६-३४॥

सूत्रार्थ- कारण के द्वारा काल की व्याख्या है।

मण्डल-7

रूपरसगन्धस्पर्शव्यतिरेकादर्थान्तरमेकत्वम् ॥७-१॥

सूत्रार्थ- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुणों से अलग होने के कारण एकत्व नामक गुण (1, 2, 3 आदि संख्यायें) उन रूप आदि गुणों से अलग धर्म पदार्थ होती हैं।

तथा पृथक्त्वम् ॥७-२॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार प्रथकता भी उनसे अलग प्रकार का धर्म पदार्थ है।

तयोर्नित्यत्वानित्यत्वे तेजसो रूपस्पर्शाभ्यां व्याख्याते ॥७-३॥

सूत्रार्थ- उन दोनों गुणों की नित्यता तथा अनित्यता तेज नामक द्रव्य के रूप तथा स्पर्श गुणों के समान व्याख्या हो जाती है।

निष्पत्तिश्च ॥७-४॥

सूत्रार्थ- और उनकी उत्पत्ति का भी तेज से ही निर्धारण होता है।

एकत्वैकपृथक्त्वयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ॥७-५॥

सूत्रार्थ- एकत्व में एकत्व तथा एकपृथकता में एकपृथकता न होने की व्याख्या अणुत्व तथा महत्व के समान है।

कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणाः ॥७-६॥

सूत्रार्थ- कर्मों से कर्म का तथा गुणों से गुण का सम्बन्ध बताया गया है।

निःसंख्यत्वात् कर्मगुणानां सर्वैकत्वं न विद्यते ॥७-७॥

सूत्रार्थ- संख्या रहित होने के कारण कर्म एवं गुणों की सर्वैकता नहीं होती है।

भ्रान्तं तत् ॥७-८॥

सूत्रार्थ- द्रव्य आदि में वह एकता का ज्ञान भ्रामक होता है।

एकत्वाभावाद्भक्तिस्तु न विद्यते ॥७-९॥

सूत्रार्थ- एकत्व के न होने के कारण भक्ति (गौणता) नहीं है अर्थात 'एक' कहने में गौण व्यवहार नहीं होता है।

कार्य्यकारणयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावादेकत्वैकपृथक्त्वं न विद्यते ॥७-१०॥

सूत्रार्थ- कार्य तथा कारण दोनों पदार्थों में एकता तथा एकपृथकता न होने से एकत्व नहीं होता है।

एतदनित्ययोर्व्याख्यातम् ॥७-११॥

सूत्रार्थ- इसी से अनित्य एकत्व तथा अनित्य एकपृथकता में समझ लिया जाता है।

अन्यतरकर्मज उभयकर्मजः संयोगजश्च संयोगः ॥७-१२॥

सूत्रार्थ- दो द्रव्यों में से एक के द्वारा क्रिया होने उत्पन्न संयोग, दोनों के द्वारा क्रिया होने से उत्पन्न संयोग तथा संयोग से उत्पन्न संयोग, इस प्रकार संयोग के तीन भेद होते हैं।

एतेन विभागो व्याख्यातः ॥७-१३॥

सूत्रार्थ- इससे विभाग की व्याख्या है।

संयोगविभागयोः संयोगविभागाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ॥७-१४॥

सूत्रार्थ- संयोग तथा विभाग दोनों में संयोग तथा विभाग के न होने की अणुता तथा महत्ता के समान व्याख्या है।

कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणा अणुत्वमहत्त्वाभ्यामिति ॥७-१५॥

सूत्रार्थ- जिस प्रकार कर्मों में कर्म का न होना है तथा गुणों में गुण का न होना है इसी प्रकार अणुत्व तथा महत्त्व में अणुत्व तथा महत्त्व का न होना है।

युतसिद्ध्यभावात् कार्यकारणयोः संयोगविभागौ न विद्यते ॥७-१६॥

सूत्रार्थ- युतसिद्धि न होने से कार्य स्वरूप तथा कारण स्वरूप दोनों में संयोग तथा विभाग नहीं होता है।

गुणत्वात् ॥७-१७॥

सूत्रार्थ- शब्द के गुण होने के कारण किसी अर्थ के साथ शब्द का संयोंग नहीं होता है। क्योंकि अर्थ का द्रव्य होना है।

गुणोऽपि विभाव्यते ॥७-१८॥

सूत्रार्थ- द्रव्य का गुण भी शब्द के द्वारा ही प्रकट होता है।

निष्क्रियत्वात् ॥७-१६॥

सूत्रार्थ- क्रिया रहित होने के कारण भी शब्द का अर्थ से संयोग नहीं होता है।

असति नास्तीति च प्रयोगात् ॥७-२०॥

सूत्रार्थ- न रहते हुए तथा नहीं है, इस प्रकार से व्यवहार (प्रयोग) होने के कारण विद्यमान तथा अविद्यमान का संयोग सम्भव नहीं है। यहां वेदान्त मत विचारणीय है।

शब्दार्थावसम्बन्धौ ॥७-२१॥

सूत्रार्थ- शब्द तथा अर्थ में कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

संयोगिनो दण्डात् समवायिनो विशेषाच्च ॥७-२२॥

सूत्रार्थ- संयोग सम्बन्ध वाले दण्ड से तथा समवाय सम्बन्ध में अलग अवयव (अंग) होने से होता है। ऐसा सम्बन्ध शब्द तथा अर्थ में नहीं है।

दृष्टत्वादहेतुः प्रत्ययः ॥७-२३॥

सूत्रार्थ- ऐसे ज्ञान का दृष्टता हेतु नहीं है।

तथा प्रत्ययाभावः ॥७-२४॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार ऐसा ज्ञान न होने का भी दृष्टता हेतु नहीं है।

सम्बद्ध सम्बन्धादिति चेत् सन्देहः ॥७-२५॥

सूत्रार्थ- परस्पर मिलन है, इस प्रकार का सम्बन्ध होने के कारण भी विभिन्न सन्देह होते हैं।

सामयिकः शब्दार्थप्रत्ययः ॥७-२६॥

सूत्रार्थ- शब्द से अर्थ का सम्बन्ध कालिक होता है। समय के अनुसार शब्द का अर्थ परिवर्तनशील है।

एकदिक्काभ्यामेकालाभ्यां सन्निकृष्टविप्रकृष्टाभ्गं परमपरम् ॥७-२७॥

सूत्रार्थ- एक दिशा में रहने वाले, एक समय में रहने वाले समीप में स्थित तथा दूर स्थित होने के अनुसार पर तथा अपर नामक गुण होते हैं।

कारणपरत्वात् कारणापरत्वाच्च ॥७-२८॥

सूत्रार्थ- कारण की परता होने से तथा कारण की अपरता होने से भी पर तथा अपर गुणों की उत्पत्ति होती है।

परत्वापरत्वयोः परत्वापरत्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ॥७-२६॥

सूत्रार्थ- अणुत्व तथा महत्त्व के समान परत्व तथा अपरत्व में परत्व तथा अपरत्व न होने की व्याख्या है।

कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणाः ॥७-३०॥

सूत्रार्थ- कर्मों में कर्म का न होने तथा गुणों में गुण का न होने की व्याख्या है।

मण्डल-8

आत्मसमवायः सुखदुःखयोः पञ्चभ्योऽर्थान्तरत्वे
हेतुस्तदाश्रयिभ्यो गुणेभ्यः ॥८-१॥

सूत्रार्थ- जिस प्रकार पृथिवी आदि पाँच द्रव्यों में दूसरी पदार्थता (दूसरा पदार्थ होना) का कारण गुण आदि का उनमें आश्रित होना है उसी प्रकार सुख दुःख दोनों का आत्मा में आश्रित होने से सुख दुःख दोनों आत्मा में अलग पदार्थ होते हैं।

इष्टानिष्टकारणविशेषाद्विरोधाच्च मिथः सुखदुःखयोरर्थान्तरभावः ॥८-२॥

सूत्रार्थ- इष्ट तथा अनिष्ट के कारण अलग अलग होने से तथा परस्पर विरोधी होने से सुख तथा दुःख दोनों का अलग पदार्थरूप में होना है।

संशयनिर्णययोरर्थान्तरभावश्च ज्ञानान्तरत्वे हेतुः ॥८-३॥

सूत्रार्थ- संशय तथा निर्धारण दोनों भिन्न होने से भी ज्ञान की भिन्नता में हेतु हैं।

तयोर्निष्पत्ति प्रत्यक्षलैङ्गिकाभ्याम् ॥८-४॥

सूत्रार्थ- उन दोनों की उत्पत्ति प्रत्यक्ष तथा अनुमान से होती है अर्थात सुख तथा दुःख के कारण अलग अलग होते हैं।

भूतमिति प्रत्यक्षं व्याख्यातम् ॥८-५॥

सूत्रार्थ- ''पूर्वकाल में ऐसा था'' ऐसे ज्ञान से भी उत्पत्ति होती है।

भविष्यतीति कार्यान्तरे दृष्टत्वात् ॥८-६॥

सूत्रार्थ- ''आगामी काल में ऐसा होगा'' वर्तमान से भिन्न कल्पना होने से भी उत्पत्ति होती है।

भवतीति सापेक्षेभ्योऽनपेक्षेभ्यश्च ॥८-७॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार 'ऐसा होता है', ऐसा ज्ञान सापेक्ष तथा अनपेक्ष होने से होता है। इससे भी उत्पत्ति है।

अभूदित्यभूतात् ॥८-८॥

सूत्रार्थ- 'पहले था, अब नहीं है' इससे भी उत्पत्ति है।

सति च कार्यादर्शनादसमवायाच्च ॥८-६॥

सूत्रार्थ- और रहते हुए भी कार्यरूप का दिखायी न देने के कारण भी सुख दुःख की उत्पत्ति है और समवाय न होने से भी।

एकार्थसमवायिकारणान्तरेषु दृष्टत्वात् ॥८-१०॥

सूत्रार्थ- एक द्रव्य से उसके किसी भाग में भिन्न कारण दिखाने से भी उत्पत्ति है।

एकदेशे इत्येकस्मिन् शिरः पृष्ठमुदरं मर्माणि तद्विशेषस्तद्विशेषेभ्यः ॥८-११॥

सूत्रार्थ- शरीर के एक भाग में सिर, पीठ, उदर, मर्मस्थल आदि उसके अलग अलग अंग होने के कारण अलग अलग ज्ञान हैं।

मण्डल-9

सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्च संशयः ॥९-१॥

सूत्रार्थ- पदार्थ के धर्म का समान्य प्रत्यक्ष होने से, अलग प्रकार (विशेष) का प्रत्यक्ष न होने से तथा अलग प्रकार (विशेष) की स्मृति होने पर संशय होता है।

दृष्टमदृष्टं च ॥९-२॥

सूत्रार्थ- और जैसा देखा चुका था, वैसा दिखायी न देने पर भी संशय होता है।

यथादृष्टमयथादृष्टत्वाच्च ॥९-३॥

सूत्रार्थ- और जिस प्रकार का स्वरूप देखा गया था, उसी प्रकार का चित्ररूप देखने पर भी संशय होता है।

दृष्टं च दृष्टवत् ॥९-४॥

सूत्रार्थ- जैसा देखा जा चुका है तथा उससे युक्त अथवा उस स्वरूप में होने पर भी संशय होता है।

उभयथा दृष्टत्वाच्च ॥९-५॥

सूत्रार्थ- और दोनों प्रकार का अथवा दोनों में ही एक धर्म दिखायी देना भी संशय का जनक है।

विद्याऽविद्यातश्च संशयः ॥९-६॥

सूत्रार्थ- विद्या (ज्ञान) तथा अविद्या (अज्ञान) भी संशय के जनक हैं।

श्रोत्रग्रहणो योऽर्थः स शब्दः ॥९-७॥

सूत्रार्थ- कान के द्वारा ग्रहण किया जाने वाला पदार्थ शब्द कहलाता है।

संयोगाद्विभागाच्च शब्दाच्च शब्दनिष्पत्तिः ॥९-८॥

सूत्रार्थ- संयोग से, विभाग से तथा स्वयं शब्द से शब्द की उत्पत्ति होती है।

तस्मिन् द्रव्यं कर्म गुण इति संशयः ॥९-९॥

सूत्रार्थ- द्रव्य है अथवा कर्म है अथवा गुण है, शब्द के विषय में ऐसा संशय है।

तुल्यजातीयेष्वर्थान्तरभूतेषु विशेषस्य उभयथा दृष्टत्वात् ॥९-१०॥

सूत्रार्थ- एक जाति वाले पदार्थों (गुणों) में, अन्य जाति वाले पदार्थों (द्रव्य तथा कर्म) में तथा दोनों में दिखायी देने से संशय है।

एकद्रव्यवत्त्वान्न द्रव्यम् ॥९-११॥

सूत्रार्थ- एक द्रव्य में रहने के कारण द्रव्य नहीं है।

नापि कर्माऽचाक्षुषत्वात् ॥९-१२॥

सूत्रार्थ- नेत्रों से दिखायी देने के कारण कर्म भी नहीं हैं।

गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम् ॥९-१३॥

सूत्रार्थ- विद्यमान होना तथा नष्ट होना गुण का कर्म के समान साधर्मता होती है। अतः न द्रव्य है, न कर्म है अपितु गुण है।

सतो लिङ्गाभावात् ॥९-१४॥

सूत्रार्थ- 'विद्यमान है' इसका बोधक न होने से अनित्य है।

नित्यवैधर्म्यात् ॥९-१५॥

सूत्रार्थ- नित्य पदार्थों से विधर्मता होने से अनित्य है।

कार्यत्वाच्च ॥९-१६॥

सूत्रार्थ- कार्य स्वरूप होने से भी अनित्य है।

अभावात् ॥९-१७॥

सूत्रार्थ- अभाव होने के कारण अनित्य है।

अनित्यश्चायं कारणतः ॥९-१८॥

सूत्रार्थ- कारण के अनुसार होने से यह शब्द अनित्य है।

न चासिद्धं विकारात् ॥९-१९॥

सूत्रार्थ- विकार होने से भी अनित्य होना सिद्ध है।

कारणतो विकारात् ॥९-२०॥

सूत्रार्थ- कारणवान होने से अनित्य है।

अभिव्यक्तौ दोषात् ॥९-२१॥

सूत्रार्थ- अभिव्यक्ति दो हो जाने का दोष होने से संशय होता है।

लिङ्गाच्चानित्यः शब्दः ॥९-२२॥

सूत्रार्थ- स्वयं अपनी पहचान कराने वाला होने से भी शब्द अनित्य होता है।

द्वयोस्तु प्रवृत्त्योरभावात् ॥९-२३॥

सूत्रार्थ- परन्तु परस्पर वार्ता में बाधक होने से अनित्य होने में संशय होता है।

संख्याभावाच्च ॥६-२४॥

सूत्रार्थ- और संख्या का न होना भी संशय का कारण है।

प्रथमा शब्दात् ॥६-२५॥

सूत्रार्थ- पुनः पुनः आवृत्ति में प्रथम शब्द होने से संशय होता है।

सम्प्रतिपत्तिभावाच्च ॥६-२६॥

सूत्रार्थ- प्रत्याभिज्ञा (पूर्व दृष्ट के ही स्वरूप का प्रत्यक्ष होना) भी संशय का कारण है।

सन्दिग्धाः सति बहुत्वे ॥६-२७॥

सूत्रार्थ- बहुत प्रकार का होने पर अथवा अनेक युक्तियां होने पर सभी ऐसे अनेक सन्देह होते हैं।

संख्याभावः सामान्यतः ॥६-२८॥

सूत्रार्थ- सामान्य क्रम से संख्या होती है।

मण्डल-10

महत्यनेकद्रव्यवत्त्वात् रूपाच्चोपलब्धिः ॥१०-१॥

सूत्रार्थ- अनेक द्रव्य वाला होने से तथा रूप होने के कारण महत् परिमाण वाले द्रव्य का प्रत्यक्ष होता है।

अद्रव्यवत्त्वात् परमाणवनुपलब्धिः ॥१०-२॥

सूत्रार्थ- अनेक द्रव्य वाला न होने से परमाणु रूप पदार्थ का प्रत्यक्ष नहीं होता है।

सत्यपि द्रव्यत्त्वे महत्त्वे रूपसंस्काराभावाद् कार्यारनुपलब्धिः ॥१०-३॥

सूत्रार्थ- दोनों के न होने पर भी महत् परिमाण वाले द्रव्य में रूप का संस्कार (चटकता) न होने पर कार्य पदार्थों का प्रत्यक्ष नहीं होता है।

रूपसंस्काराभावाद् वायोरनुपलब्धिः ॥१०-४॥

सूत्रार्थ- रूप का संस्कार न होने से वायु का प्रत्यक्ष नहीं होता है।

अनेकद्रव्यसमवायात् रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः ॥१०-५॥

सूत्रार्थ- अनेक द्रव्य का समवाय होने से तथा अलग प्रकार का (विशेष) रूप होने से प्रत्यक्ष होता है।

एतेन रसगन्धस्पर्शेषु ज्ञानं व्याख्यातम् ॥१०-६॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार रस, गन्ध तथा स्पर्श वाले द्रव्यों में ज्ञान होने की व्याख्या है।

तस्याभावादव्यभिचारः ॥१०-७॥

सूत्रार्थ- उस (नियम) का न होना व्यभिचार दोष नहीं होता है।

सङ्ख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिद्रव्यसमवायाच्चाक्षुषाणि ॥१०-८॥

सूत्रार्थ- रूप वाले द्रव्यों में संख्या, परिमाण, पृथकता, संयोग, विभाग, परता, अपरता तथा कर्म का समवाय होने से उनका नेत्र द्वारा प्रत्यक्ष होता है।

अरूपिष्वचाक्षुषाणि ॥१०-९॥

सूत्रार्थ- रूपरहित द्रव्यों में उनका नेत्र द्वारा प्रत्यक्ष नहीं है।

एतेन गुणत्वे भावे च सर्वेन्द्रियं ज्ञानं व्याख्यातम् ॥१०-१०॥

सूत्रार्थ- इसी प्रकार गुणता में तथा सत्ता में समस्त इन्द्रियों का ज्ञान होना बताया जाता है।

सदकारणवन्नित्यम् ॥१०-११॥

सूत्रार्थ- कारणरहित स्वरूप वाला विद्यमान पदार्थ नित्य कहलाता है।

तस्य कार्य्यं लिङ्गम् ॥१०-१२॥

सूत्रार्थ- कार्यस्वरूप उसको पहचानने के लिए बोधक कहलाता है।

कारणभावात् कार्यभावः ॥१०-१३॥

सूत्रार्थ- कारणस्वरूप का भाव होने से कार्य की सत्ता (भाव) कहलाती है।

अनित्य इति विशेषतः प्रतिषेधभावः ॥१०-१४॥

सूत्रार्थ- 'अनित्य है' ऐसा भेद के अनुसार है जो नित्य की सत्ता का प्रतिषेध है।

अविद्या च ॥१०-१५॥

सूत्रार्थ- उस कारण का ज्ञान न होने से भी अनित्य कहा जाता है अथवा मूल कारण अनित्य कहना भी अज्ञान होता है।

मण्डल-11

रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी ॥११-१॥

सूत्रार्थ- पृथिवी नामक द्रव्य पदार्थ में रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श नामक गुण होते हैं।

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः ॥११-२॥

सूत्रार्थ- जल नामक द्रव्य में रूप, रस तथा स्पर्श नामक गुण होते हैं और वह तरल और चिकना होता है।

तेजो रूपस्पर्शवत् ॥११-३॥

सूत्रार्थ- रूप तथा स्पर्श नामक गुण अग्नि में होते हैं।

स्पर्शवान् वायुः ॥११-४॥

सूत्रार्थ- स्पर्श नामक गुण वायु नामक द्रव्य में होता है।

ते आकाशे न विद्यन्ते ॥११-५॥

सूत्रार्थ- वे गुण आकाश नामक द्रव्य में नहीं होते हैं।

सर्पिर्जतुमधूच्छिष्टानामग्निसंयोगाद् द्रवत्वमद्भिः सामान्यम् ॥११-६॥

सूत्रार्थ- अग्नि द्रव्य से संयोग होने से घी, लाख, मोम आदि पार्थिव द्रव्यों में तरलता सामान्य धर्म होता है।

त्रपुसीसलोहरजतसुवर्णानामग्निसंयोगाद् द्रवत्वमद्भिः सामान्यम् ॥११-७॥

सूत्रार्थ- अग्नि द्रव्य से अधिक संयोग होने से रांगा, सीसा, लोहा, चांदी तथा सुवर्ण (सोना, गोल्ड) आदि तेजस् द्रव्यों में तरलता सामान्य धर्म होता है।

पुष्पवस्त्रयोः सति सन्निकर्षे गुणान्तराप्रादुर्भावो वस्त्रे गन्धाभावलिङ्गम् ॥११-८॥

सूत्रार्थ- पुष्प तथा वस्त्र दोनों का सम्पर्क होने पर अन्य कोई गुण (गन्ध के अतिरिक्त) प्रकट नहीं होता है। अतः वस्त्र में गन्ध का न होना ही वस्त्र की पहचान के लिए बोधक होता है।

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः ॥११-६॥

सूत्रार्थ- पृथिवी में गन्ध नामक गुण व्यवस्थित (समान रूप से सर्वत्र व्याप्त) होता है। गन्ध ही पृथिवी का स्वभाविक अथवा मौलिक गुण कहलाता है, जो पृथिवी की विद्यमानता सिद्ध करता है।

तेजस्युष्णता ॥११-१०॥

सूत्रार्थ- इसी प्रकार अग्नि का उष्णता बोधक होता है, क्योंकि उष्णता स्वभाविक धर्म है।

अप्सु शीतता ॥११-११॥

सूत्रार्थ- इसी प्रकार शीतता जल का स्वभाविक धर्म होने से बोधक होता है।

एतेनाप्सूष्णता व्याख्याता ॥११-१२॥

सूत्रार्थ- इसी प्रकार जल में उष्णता की व्याख्या है। अर्थात पार्थिव तथा तेज द्रव्यों के समान जल से अग्नि संयोग होने से जल में उष्णता धर्म होता है।

विषाणी ककुद्मान् प्रान्तेबालधिः सास्नावान् इति गोत्वे दृष्टं लिङ्गम् ॥११-१३॥

सूत्रार्थ- सींगयुक्त होना, कूबड़वान होना, गुच्छरूप पूछान्तवान होना, चर्मयुक्त मांसपिण्ड का गले में लटकना आदि गाय को पहचानने के लिये दृष्ट (दिखांयी देने वाला) साधक अथवा बोधक होते हैं।

तथा स्पर्शश्च वायोः ॥११-१४॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार स्पर्श गुण भी वायु नामक द्रव्य का बोधक है।

न च दृष्टानां स्पर्श इत्यदृष्टलिङ्गो वायोः ॥११-१५॥

सूत्रार्थ- दिखायी देने वाले द्रव्यों का स्पर्श गुण बोधक नहीं है, इसलिये अदृष्ट होने से अदृष्ट वायु का बोधक भी अदृष्ट है।

वायोर्वायुसम्मूर्च्छनं नानात्वलिङ्गम् ॥११-१६॥

सूत्रार्थ- वायु से वायु की टकराहटों से वायु के अनेक बोधक प्रतीत होते हैं।

वायुसन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद् दृष्टं लिङ्गं न विद्यते ॥११-१७॥

सूत्रार्थ- वायु के निकट होने पर निकटता का प्रत्यक्ष न होने से दृष्ट बोधक नहीं होता है।

सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः ॥११-१८॥

सूत्रार्थ- और सामान्य रूप में दृष्ट होने से भी उसका बोधकरूप अलग (विशेष) धर्म दृष्ट नहीं होता है।

तस्मादागमिकम् ॥११-१९॥

सूत्रार्थ- उस प्रकार से दिखायी देने का वर्णन आगमों (संकलनों) में है। उससे ही वायु का प्रत्यक्ष कहा गया है।

संज्ञाकर्मत्वस्याद्विशिष्टानां लिङ्गम् ॥११-२०॥

सूत्रार्थ- वायु के समान अन्य विशिष्ट (पृथिवी आदि से भिन्न अदृष्ट) पदार्थों का बोधक संज्ञाकर्मता (नामकरण) हो सकता हैं और नहीं भी।

प्रत्यक्षपूर्वकत्वात् संज्ञाकर्मणः ॥११-२१॥

सूत्रार्थ- नाम वाले के गुण धर्मों के प्रत्यक्ष के अनुरूप नामकरण होता है।

प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वाच्च ॥११-२२॥

सूत्रार्थ- और उसके गुण धर्मों को जानने का प्रयत्न होता है।

अद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यम् ॥११-२३॥

सूत्रार्थ- जो द्रव्य नहीं है, उनका आश्रय होने से वायु द्रव्य कहलाता है।

क्रियावत्त्वाद् गुणवत्त्वाच्च ॥११-२४॥

सूत्रार्थ- और क्रिया तथा गुण दोनों इसमें होते हैं, इस कारण भी द्रव्य है।

अद्रव्यत्वेन नित्यत्वमनित्यत्वं चोक्तम् ॥११-२५॥

सूत्रार्थ- कोई अन्य द्रव्य समवायि कारण न होने से नित्य तथा स्थिर आश्रय न होने से वायु अनित्य कहलाता है।

तथा निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ॥११-२६॥

सूत्रार्थ- उसी (वायु) के समान निकलना, प्रवेश करना आदि आकाश के बोधक बताये जाते हैं।

तदलिङ्गमेकद्रव्यत्वात् कर्मणः ॥११-२७॥

सूत्रार्थ- वे आकाश के बोधक नहीं हैं, क्योंकि कर्म तो एक द्रव्य में ही रहता है। आने तथा जाने वाला द्रव्य आकाश में दूसरा द्रव्य है।

कारणान्तरानुक्लृप्तिवैधर्म्याच्च ॥११-२८॥

सूत्रार्थ- और दूसरे कारण की स्थानापन्नता अन्य द्रव्यों से आकाश द्रव्य की विधर्मता है, इसलिये आने तथा जाने का आकाश कारण नहीं है।

संयोगादभावः कर्मणः ॥११-२६॥

सूत्रार्थ- संयोग होने से कर्म का नाश होता है अर्थात आकाश बाधक न होने से नाश का कारण नहीं है।

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ॥११-३०॥

सूत्रार्थ- कारण स्वरूप पदार्थ के गुणों के अनुसार कार्य स्वरूप पदार्थ में गुण दिखायी देते हैं।

कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्द स्पर्शवतामगुणः ॥११-३१॥

सूत्रार्थ- दूसरा कार्य प्रकट न होने से भी शब्द स्पर्श वालों का गुण नहीं है क्योंकि आकाश के अतिरिक्त आकाश का कोई कार्य नहीं है, अन्य स्पर्शवान द्रव्यों के विभिन्न कार्य होते हैं।

कार्यनाराप्रादुर्भावाच्च ॥११-३२॥

सूत्रार्थ- और कार्यरूप वाद्ययन्त्र (द्रव्य) में भिन्नता प्रकट होने से भी स्पर्श गुण वाले द्रव्यों का शब्द गुण नहीं है।

परत्रसमवायात् प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनदिक्कालोगुणः ॥११-३३॥

सूत्रार्थ- दूसरे द्रव्य में समवाय होने से तथा प्रत्यक्षता होने से शब्द न आत्मा का गुण है, न मन, दिशा तथा काल का गुण है।

परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य ॥११-३४॥

सूत्रार्थ- आकाश के अतिरिक्त (दृष्ट तथा दृष्ट अथवा स्पर्शयुक्त द्रव्यों का गुण न होने से) अन्य द्रव्यों के बोधक न होने से यह शेष गुण शब्द आकाश का ही बोधक है।

द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥११-३५॥

सूत्रार्थ- आकाश की द्रव्यता तथा नित्यता वायु के समान सिद्ध हो जाती है।

तत्त्वम्भावेन ॥११-३६॥

सूत्रार्थ- सत्ता के समान आकाश के एकत्व की सिद्धि हो जाती है।

शब्दलिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च ॥११-३७॥

सूत्रार्थ- शब्द रूप बोधक भेदयुक्त न होने से तथा अलग बोधक न होने से भी आकाश में एकत्व गुण सिद्ध हो जाता है।

तदनुविधानादेकपृथक्त्वं ॥११-३८॥

सूत्रार्थ- उस पश्चात वर्तना (एक के बाद दूसरा) के अनुसार एकपृथकता गुण आकाश में सिद्ध हो जाता है।

मण्डल-12

अपरस्मिन्नपरं युगपत् चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥१२-१॥

सूत्रार्थ- तुलनात्मक अपर में पर होना, एक साथ होना, देर से होना, शीघ्रता से होना, इस प्रकार काल के बोधक हैं।

द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥१२-२॥

सूत्रार्थ- काल नामक द्रव्य की द्रव्यता तथा नित्यता की वायु के समान व्याख्या है।

तत्त्वम्भावेन ॥१२-३॥

सूत्रार्थ- सत्ता के समान काल का तत्व (निरावयव) होना है।

कार्य्यविशेषेण नानात्वम् ॥१२-४॥

सूत्रार्थ- कार्यों के अलग अलग होने से काल की अनेकता कही जाती है।

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति ॥१२-५॥

सूत्रार्थ- नित्य पदार्थों में न होने तथा अनित्य पदार्थों में होने से काल को भी कारण कहा जाता है।

इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम् ॥१२-६॥

सूत्रार्थ- 'इधर है' (तुलनात्मक) यह है, इस प्रकार का व्यवहार, जिससे होता है, वह दिशा होती है तथा दिशा के बोधक होते हैं।

आदित्यसंयोगाद्भूतपूर्वाद्भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥१२-७॥

सूत्रार्थ- जहां पूर्वकाल में, वर्तमानकाल में तथा भविष्यकाल में सदैव सूर्य का स्थान संयोग होता है, वहां प्राची (पूर्व) कहलाता है।

तथा दक्षिणा प्रतीचि उदीची च ॥१२-८॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर आदि दिशायें होती हैं।

द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥१२-९॥

सूत्रार्थ- दिशा नामक द्रव्य की द्रव्यता तथा नित्यता की वायु के समान व्याख्या है।

तत्त्वम्भावेन ॥१२-१०॥

सूत्रार्थ- सत्ता के समान दिशा के एक होने की व्याख्या है।

कार्य्यविशेषेण नानात्वम् ॥१२-११॥

सूत्रार्थ- अलग अलग कार्यों के होने से दिशा की अनेकता का व्यवहार होता है।

एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि ॥१२-१२॥

सूत्रार्थ- इससे अन्तर्दिशाओं की व्याख्या है।

मण्डल-13

प्रसिद्धा इन्द्रियार्थाः ॥१३-१॥

सूत्रार्थ- इन्द्रियों के अर्थ (विषय) ज्ञात हैं।

इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्यः ॥१३-२॥

सूत्रार्थ- इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान इन्द्रिय विषय से भिन्न पदार्थ होता है।

इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः ॥१३-३॥

सूत्रार्थ- इन्द्रिय विषय से भिन्न पदार्थ का हेतु इन्द्रिय विषय का ज्ञान (अनुमान साधक) होता है।

सोऽनपदेशः ॥१३-४॥

सूत्रार्थ- वह कथन हेतु अनपदेश है अर्थात साधक का एक से अधिक साध्यों से सम्बन्ध है।

कारणाज्ञानात् ॥१३-५॥

सूत्रार्थ- यदि शरीर साध्य है तो उसके कारणरूप पृथिवी आदि भूत पदार्थों में ज्ञान नहीं है अर्थात् ज्ञानरूप साधक का साध्य शरीर से अलग होना है।

कार्याज्ञानाच्च ॥१३-६॥

सूत्रार्थ- शरीर के कारणरूप पदार्थों के अन्य कार्यों में भी ज्ञान नहीं है अर्थात ज्ञान रूप साधक का साध्य शरीर से अलग है।

कार्य्येषु ज्ञानाच्च ॥१३-७॥

सूत्रार्थ- अन्य कार्यरूप पदार्थों का कार्य ज्ञान नहीं है और उन कारणरूप के शरीररूप कार्य के विभिन्न कार्यों में एक कार्य ज्ञान भी होता है अर्थात ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञाता शरीर में ही शरीर से अलग होता है।

अज्ञानाच्च ॥१३-८॥

सूत्रार्थ- और पृथिवी आदि कारणरूप भूतों में ज्ञान नहीं है तथा उनके अन्य कार्यों में ज्ञान नहीं है तथा उनके शरीर इन्द्रिय आदि कार्य रूप में भी ज्ञान नहीं

है तथा उनके कारणरूप अवयवों में भी ज्ञान नहीं है अतः शरीर तथा शरीरांगों में एवं भूतरूप कारण अथवा अवयवरूप कारण में ज्ञान नहीं है अर्थात ज्ञानवान ज्ञाता अलग होने से ज्ञान उसी ज्ञानवान का साधक है।

अन्यदेव हेतुरित्यनपदेशः ॥१३-९॥

सूत्रार्थ- ज्ञान का सम्बन्ध शरीर के अतिरिक्त किसी अन्य से ही होने के कारण उसका ही हेतु (साधक) है। इस प्रकार अनपदेश होता है और ज्ञान रूप साधक से शरीर की सिद्धि नहीं होती है, अपितु अन्य पदार्थ आत्मा की सिद्धि हो जाती है।

अर्थान्तरं ह्यर्थान्तरस्याऽनपदेशः ॥१३-१०॥

सूत्रार्थ- जिस प्रकार साध्य से असम्बन्धित पदार्थ किसी अन्य पदार्थ का ही साधक होता है, उसी प्रकार उपरोक्त हेतु कथन भी शरीर के अतिरिक्त अन्य पदार्थ (आत्मा) का साधक होता है, क्योंकि ज्ञानरूप साधक शरीर से असम्बन्धित है।

संयोगि समवाय्येकार्थसमवायि विरोधि च ॥१३-११॥

सूत्रार्थ- साध्य एवं साधक के सम्बन्ध भेद स्पष्ट करते हुए महर्षि गार्ग्य प्रसिद्ध कणाद के द्वारा बताया गया है कि सम्बन्ध के आधार पर संयोगी समवायी, एकार्थसमवायी तथा विरोधी साधक होते हैं। जो साध्य को सम्बन्ध की सीमा तक ही सिद्ध करने में समर्थ होते हैं और अनपदेश ही कहलाते हैं।

कार्यं कार्यान्तरस्य ॥१३-१२॥

सूत्रार्थ- विभिन्न कार्यरूप पदार्थों में सम्बन्ध के आधार एक कार्यपदार्थ दूसरे कार्य पदार्थ का साधक होना अनपदेश है।

कारणं कारणान्तरस्य ॥१३-१३॥

सूत्रार्थ- कारणपदार्थ का साधक किसी अन्य कारणपदार्थ का होना अनपदेश है।

विरोध्यभूतं भूतस्य ॥१३-१४॥

सूत्रार्थ- जो पूर्व काल में नहीं था, उसका साधक, उसका विरोधी पदार्थ का होना अनपदेश है, जो पूर्व काल में था।

भूतमभूतस्य ॥१३-१५॥

सूत्रार्थ- जो पूर्व काल में नहीं था, उसका साधक, जो पूर्व काल में हुआ था, अनपदेश है।

भूतो भूतस्य ॥१३-१६॥

सूत्रार्थ- जो पूर्व काल में था, उसका साधक ऐसा पदार्थ है, जो पूर्व कालिक हो चुका है।

अभूतमभूतस्य ॥१३-१७॥

सूत्रार्थ- जो पूर्व कालिक (अविद्यमान) नहीं हुआ है, उसका साधक ऐसा पदार्थ, जो पूर्वकालिक (अविद्यमान) नहीं हुआ है। अनपदेश होता है।

प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य ॥१३-१८॥

सूत्रार्थ- अपदेश का साधक प्राप्त ज्ञान के अनुरूपता होने से होता है।

अप्रसिद्धोऽनपदेशः ॥१३-१६॥

सूत्रार्थ- साध्य तथा साधक के सम्बन्ध का ज्ञान, यदि नहीं है, तो अनपदेश होता है।

असन् सन्दिग्धश्चानपदेशः ॥१३-२०॥

सूत्रार्थ- और ज्ञान रहते हुए भी, यदि सन्देह युक्त ज्ञान होता है, तो भी अनपदेश होता है। अर्थात सन्देह रहित सम्बन्धज्ञान के अनुरूप साधक होने से ही अपदेश होता है।

यस्माद्विषाणी तस्मादश्वः ॥१३-२१॥

सूत्रार्थ- जिस साधक (सींग) होने से सींग वाला पशु सिद्ध होता है, उसी साधक (सींग) के न होने से घोड़ा सिद्ध हो जाता है। यह सन्देहयुक्त अथवा अन्य सींगवान तथा सींग रहित पशुओं को सिद्ध करने वाला होने से अनपदेश होता है।

तथा यस्माद्विषाणी तस्माद् गौरिति ॥१३-२२॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार जिससे सींग रूप साधक से अन्य पशुओं की सिद्ध हो जाती है उस (सींग रूप साधक) से ही गाय सिद्ध हो जाती है अर्थात एक से अधिक साध्यों का एक साधक होना अन्य मतों से अनैकान्तिक कहलाता है, जो अनपदेश ही होता है।

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षाद्यन्निष्पद्यते तदन्यत् ॥१३-२३॥

सूत्रार्थ- आत्मा, इन्द्रिय, मन तथा अर्थ के निकट हो जाने से, जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह शरीर के अतिरिक्त अन्य से सम्बन्धित है। यह ज्ञान ही आत्मा का साधक है और प्रत्यक्ष है।

प्रवृत्तिनिर्वृत्ती च प्रत्यगात्मनि दृष्टे परत्र लिङ्गम् ॥१३-२४॥

सूत्रार्थ- प्रवृत्ति (प्रयत्नारम्भ) तथा निवृत्ति (प्रयत्लानारम्भ) प्रत्येक आत्मा में दिखायी देने पर अन्य अलग अलग आत्मा का भी साधक है। अर्थात समस्त शरीरों में आत्मा का होना सिद्ध होता है।

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतिन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुख-इच्छाद्वेषप्रयत्नश्चात्मनो लिङ्गानि ॥१३-२५॥

सूत्रार्थ- प्राण (स्वांस लेना), अपान (स्वांस छोड़ना), निमेष (नेत्र बन्द करना), उन्मेष (खोलना), जीवन, मन की चाल, इन्द्रियों के विकार, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष तथा प्रयत्न आत्मा को पहचानने के लिये लक्षण होते हैं, इनसे आत्मा का प्रत्यक्ष भी होता है।

यज्ञदत्त इति सन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद् दृष्टं लिङ्गं न विद्यते ॥१३-२६॥

सूत्रार्थ- 'यह यज्ञदत्त है'। किसी आत्मावान शरीर को जब ऐसा कहा जाता है, तब देखने वाले को यज्ञदत्त रूप में शरीर ही दिखायी देता है और आत्मा का प्रत्यक्ष नहीं होता है। ऐसा सम्बन्ध प्रत्यक्ष न होने के कारण शरीर का दिखायी देना आत्मा का दिखायी देना नहीं है। इसलिये दिखायी देने वाला शरीर उस अप्रत्यक्ष आत्मा का अनुमान करने के लिये साधक नहीं होता है।

सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः ॥१३-२७॥

सूत्रार्थ- और सामान्य रूप में ऐसा देखने से भी साध्य (आत्मा) के सम्बन्ध का ज्ञान विशेष (शरीर के धर्म से अलग धर्म का) नहीं है।

तस्मादागमिकः ॥१३-२८॥

सूत्रार्थ- उससे आगम वर्णित ज्ञान का होना है जो विशेष नहीं है। अर्थात शब्द और शरीर का सम्बन्ध बताना है। अर्थात सन्देहयुक्त ज्ञान है।

अहमिति शब्दस्य व्यतिरेकान्नागमिकम् ॥१३-२९॥

सूत्रार्थ- 'मैं हूं' ऐसे शब्द का प्रयोग निर्जीव पदार्थों के द्वारा नहीं होता हैं। ऐसा होने से ही शब्द का शरीर से सम्बन्ध होना नहीं कहा जाता है।

यदि दृष्टमन्वक्षमहं देवदत्तोऽहं यज्ञदत्त इति ॥१३-३०॥

सूत्रार्थ- यदि अहम् शब्द को शरीर आदि के समान प्रत्यक्ष कहा जाता है और जिसका प्रत्यक्ष होना आत्मा का ही प्रत्यक्ष होना कहा जाता है, तो 'मैं देवदत्त हूँ', 'यज्ञदत्त हूँ' आदि ज्ञान का भी प्रत्यक्ष ही है, क्योंकि प्रत्यक्ष साध्य का साधक भी प्रत्यक्ष होता है। अतः ऐसे शब्द शरीर के ही बोधक अथवा साधक हैं, आत्मा के नहीं हैं, क्योंकि आत्मा अप्रत्यक्ष (इन्द्रिय अप्रत्यक्ष) है और शरीर प्रत्यक्ष है।

दृष्ट्यात्मनि लिङ्गे एक एव दृढत्वात् प्रत्यक्षवत् प्रत्ययः ॥१३-३१॥

सूत्रार्थ- आत्मा को देखने में, उसके अहम् आदि शब्द रूप साधक में एक ही दृढ़ता (एकाग्रता) हो जाने के कारण, अहम् रूप में आत्मा का प्रत्यक्ष के समान

ज्ञान होना कहा जाता है। अर्थात किसी शब्द अथवा आकार का एकाग्र चिन्तन होने पर आत्माकार ही हो जाना है। अर्थात यह विषय का ही प्रत्यक्ष है।

देवदत्तो गच्छति यज्ञदत्तो गच्छति विष्णुमित्रो गच्छतीत्युपचाराच्छरीरे प्रत्ययः ॥१३-३२॥

सूत्रार्थ- देवदत्त जाता है, यज्ञदत्त जाता है, विष्णुमित्र जाता है आदि के व्यवहार से शरीर का ही ज्ञान होता है, आत्मा का नहीं।

सन्दिग्धस्तूपचारः ॥१३-३३॥

सूत्रार्थ- ऐसे सभी व्यवहार संदिग्ध सम्बन्ध आधारित अथवा हेतु (साधक) होते हैं।

अहमिति प्रत्यगात्मनि भावात् परत्राभावादार्थान्तरप्रत्यक्षः ॥१३-३४॥

सूत्रार्थ- 'मैं हूं' आदि का व्यवहार प्रत्येक आत्मा (आत्मावान शरीर) में होने से तथा अन्य निरात्मा (आत्मा रहित शरीर) में न होने से आत्मा से अलग दूसरे पदार्थ का प्रत्यक्ष होता है।

देवदत्तो गच्छतीत्युपचारादभिमानात्तावच्छरीरप्रत्यक्षोऽहङ्कारः ॥१३-३५॥

सूत्रार्थ- 'देवदत्त जाता है' आदि व्यवहार से स्वयं को मानने (अपनापन) के कारण इतना ही शरीर के प्रत्यक्ष को अहंकार कहते हैं।

सन्दिग्धस्तूपचारः ॥१३-३६॥

सूत्रार्थ- क्योंकि ऐसा व्यवहार तो संदिग्ध सम्बन्ध अथवा हेतु ही होता है।

न तु शरीरविशेषाद् यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोर्ज्ञानविशेषः ॥१३-३७॥

सूत्रार्थ- परन्तु ऐसा ज्ञान तो उनके शरीरों के अलग-अलग होने के कारण यज्ञदत्त तथा विष्णुमित्र दोनों का अलग अलग ज्ञान है।

अहमिति मुख्ययोग्याभ्यां शब्दवद्व्यतिरेकाव्य[illegible]चाराद् विशेषसिद्धेर्नागमिकः ॥१३-३८॥

सूत्रार्थ- 'मैं हूँ' ऐसा ज्ञान मुख्य तथा योग्य के द्वारा शब्द के समान अहम् प्रतीति के अभाव का व्यभिचार न होने से अलग सिद्ध होने में आत्मिक नहीं है अर्थात आत्मा से सम्बन्धित नहीं है, इसलिये अहम् आदि शब्द न आत्मा के बोधक हैं, न साधक हैं।

सुखदुःखज्ञाननिष्पत्त्यविशेषादैकात्म्यम् ॥१३-३६॥

सूत्रार्थ- सुख, दुःख तथा ज्ञान की उत्पत्ति शरीर में अन्यत्र न होने से आत्मा में एकात्म गुण का होना है। अर्थात शरीर में आत्मा एक ही होती है।

व्यवस्थातो नाना ॥१३-४०॥

सूत्रार्थ- अलग अलग शरीरों में क्रम बन्धन (व्यवस्था, निश्चित नियम) के अनुरूप होती है, इससे आत्मा को अनेक कहा जाता है।

शास्त्रसामर्थ्याच्च ॥१३-४१॥

सूत्रार्थ- वेद की व्याख्याओं से भी एक अथवा अनेक माना जाता है।

तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥१३-४२॥

सूत्रार्थ- उसकी द्रव्यता तथा नित्यता की व्याख्या वायु के समान हो जाती है।

आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिङ्गम् ॥१३-४३॥

सूत्रार्थ- आत्मा, इन्द्रिय तथा विषय की निकटता में ज्ञान का होना तथा न होना मन को पहचानने के लिये साधक होता है।

तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥१३-४४॥

सूत्रार्थ- उसकी द्रव्यता तथा नित्यता की व्याख्या वायु के समान हो जाती है।

प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञानायोगपद्याच्चैकम् ॥१३-४५॥

सूत्रार्थ- एक से अधिक प्रयत्नों का एक साथ न होना तथा एक से अधिक ज्ञानों का एक साथ न होना मन का एक होना सिद्ध करता है।

मण्डल-14

तत्पुनः पृथिव्यादिकार्य्यद्रव्यं त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम् ॥१४-१॥

सूत्रार्थ- पूर्व कथित द्रव्य, गुण तथा कर्म से मिलकर कार्यरूप द्रव्य के तीन भेद हो जाते हैं, जिनको शरीर, इन्द्रियां तथा विषय कहा जाता है। आत्मावान तथा आत्मा रहित दो भेद भी हैं। नर, मादा तथा उभयलिंगी (हिजड़ा, अपूर्णनरमादा) भी आत्मावान के भेद हैं। अपनी इच्छा रूप कारण की व्यवस्था से उनके अन्य भेद भी हैं।

प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणां संयोगस्याप्रत्यक्षत्वाद् वायुवनस्पतिसंयोगवत् पञ्चात्मकं न विद्यते ॥१४-२॥

सूत्रार्थ- जिस प्रकार वायु तथा वनस्पति के संयोग का प्रत्यक्ष नहीं होता है, उसी प्रकार अप्रत्यक्ष वायु तथा आकाश का प्रत्यक्ष पृथिवी, जल तथा अग्नि से संयोग का प्रत्यक्ष नहीं होता है, इसलिये उपर्युक्त शरीर, इन्द्रियाँ तथा विषय भी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष द्रव्यों के संयोग से नहीं बनते हैं और पंचात्मक नहीं होते है।

गुणान्तराप्रादुर्भावाच्च ॥१४-३॥

सूत्रार्थ- पृथिवी के गुण गन्ध के अतिरिक्त कोई दूसरा गुण प्रकट न होने से भी पंचात्मक नहीं है अथवा एक द्रव्य से ही बनते हैं, पाँच द्रव्यों से नहीं।

न त्र्यात्मकमपि च ॥१४-४॥

सूत्रार्थ- और तीन द्रव्यों (पृथिवी, जल तथा अग्नि) से भी नहीं बनते हैं, क्योंकि जल का गुण तरलता तथा अग्नि का गुण उर्ध्वज्वलन शरीर आदि में प्रकट नहीं होता है।

अणुसंयोगस्त्वप्रतिषिद्धो मिथः पञ्चानाम् ॥१४-५॥

सूत्रार्थ- परन्तु अणुरूप द्रव्यों का परस्पर संयोग अस्वीकार नहीं है अर्थात अणुरूप (कार्यरूप) का ही संयोग मानकर पंचात्मक कहा जाता है।

तथा आत्मसंयोगश्च विप्रतिषिद्धः ॥१४-६॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार आत्मा का संयोग भी अस्वीकार नहीं है, इसलिये आत्मावान शरीर को भी परस्पर पाँच द्रव्यों का ही बना कहा जाता है। यद्यपि इस्लाम आदि के मत से समानता है, परन्तु वह वर्णन स्थूल अथवा सामान्य है कि जीवरूप, आत्मा (जान) का मिट्टी आदि से बने शरीर में प्रवेश होता है।

तच्च शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च ॥१४-७॥

सूत्रार्थ- वह शरीर भी दो प्रकार का होता है- योनिज (सांचे से बने) तथा अयोनिज (सांचा रहित, अनिश्चित आकार) शरीर।

अनियतदिग्देशपूर्वकत्वाच्च ॥१४-८॥

सूत्रार्थ- अनियत दिशा तथा स्थान की पूर्वकता होने से भी विभाग होते हैं।

अनेकदेशपूर्वकत्वात् ॥१४-९॥

सूत्रार्थ- अनेक स्थान की पूर्वकता होने से भी विभाग होता है।

धर्मविशेषाच्च ॥१४-१०॥

सूत्रार्थ- धर्म के अलग-अलग होने से भी विभाग होते हैं।

कार्यविशेषाच्च ॥१४-११॥

सूत्रार्थ- कार्य रूप अलग-अलग होने से भी विभाग होते हैं।

समाख्याभावाच्च ॥१४-१२॥

सूत्रार्थ- और समान वर्णन (अभिव्यक्ति, उत्पत्ति) से भी विभाग माने जाते हैं।

संज्ञाया आदित्वाच्च ॥१४-१३॥

सूत्रार्थ- संज्ञाओं (नामों) की प्राचीनता होने से भी विभाग माने जाते हैं।

सन्त्ययोनिजाः ॥१४-१४॥

सूत्रार्थ- पूर्वकाल से अयोनिज शरीर होना माना जाता रहा है।

वेदलिङ्गाच्च ॥१४-१५॥

सूत्रार्थ- वेद का साधक रूप होने से भी विभाग सिद्ध होते हैं।

मण्डल-15

आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म ॥१५-१॥

सूत्रार्थ- आत्मा का हाथ से संयोग तथा आत्मा का प्रयत्न दोनों से हाथ में कर्म होता है।

तथा हस्तसंयोगाच्च मुसले कर्म ॥१५-२॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार हाथ का मूसल से संयोग होने के कारण भी मूसल में कर्म होता है, अर्थात आत्मा का प्रयत्न कर्म का मूल कारण है।

मुसलाभिघातजे मुसलादौ कर्मणि व्यतिरेकादकारणं हस्तसंयोगः ॥१५-३॥

सूत्रार्थ- मूसल की चोट से उत्पन्न मूसल कर्म में संयोग का अभाव होने के कारण हस्त संयोग कारण नहीं होता है। कारण से समवायि कारण अभिप्रेत है।

तथात्मसंयोगो हस्तकर्माणिः ॥१५-४॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार आत्मा का संयोग भी हस्तकर्म का कारण नहीं होता है। इसलिये संयोग को असमवायि कारण अथवा निमित्त कारण कहा जाता है।

अभिघातान्मुसलसंयोगाद्धस्ते कर्म ॥१५-५॥

सूत्रार्थ- नियत चोट होने से तथा मूसल का संयोग होने से हाथ में कर्म उत्पन्न होता है। ऐसा हस्तकर्म उपर्युक्त हस्तकर्म से अलग है। आत्मज तथा अभिघातज दो प्रकार के हस्तकर्म होना अभिप्रेत है।

तथा आत्मकर्म हस्तसंयोगाच्च ॥१५-६॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार हाथ से संयोग होने पर आत्मा अथवा शरीर में कर्म उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्रयत्नज तथा अभिघातज दो प्रकार के कर्म आत्मा में होते हैं, परन्तु दोनों में संयोग का होना सामान्य है।

संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् ॥१५-७॥

सूत्रार्थ- संयोग का अभाव होने पर गुरुत्व से पदार्थों का पतनकर्म होना है। गुरुत्व से पृथिवी द्रव्य की अपेक्षा अभिप्रेत है, जिसकी व्याख्या विज्ञान से भी होती है।

नोदनविशेषाभावान्नोर्ध्वं न तिर्यग्गमनम् ॥१५-८॥

सूत्रार्थ- नोदन विशेष (अलग प्रकार की प्रेरणा) का अभाव होने से नियत की ओर आने वाला द्रव्य न ऊपर की ओर जाता है और न इधर उधर जाता है।

प्रयत्नविशेषान्नोदनविशेषः ॥१५-९॥

सूत्रार्थ- प्रयत्न के विशेष (भेद) होने से नोदन विशेष होता है।

नोदनविशेषादुदसनविशेषः ॥१५-१०॥

सूत्रार्थ-नोदन विशेष होने से उदसन (त्वरण) विशेष होता है। अर्थात गति वृद्धि का कारण प्रयत्न का विशेष होना है अथवा नोदन विशेष होना हैं।

हस्तकर्मणा दारककर्म व्याख्यातम् ॥१५-११॥

सूत्रार्थ- हस्तकर्म के समान अबोध बालक के कर्म की व्याख्या है।

तथा दग्धस्य विस्फोटने ॥१५-१२॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार जले शरीर में फफोले फूटने में कर्म की व्याख्या है। अर्थात आत्मा का प्रयत्न ही कारण है।

यत्नाभावे प्रसुप्तस्य चलनं पतनं च ॥१५-१३॥

सूत्रार्थ- प्रयत्न के अभाव में अथवा पूर्व प्रयत्न के बन्द होने पर सोये हुए आत्मावान शरीर का चलना तथा पतन (क्षरण) कर्म होता है।

तृणे कर्म वायुसंयोगात् ॥१५-१४॥

सूत्रार्थ- वायु से संयोग होने से तिनका में कर्म होता है।

मणिगमनं सूच्यभिसर्पणमित्यदृष्टकारणम् ॥१५-१५॥

सूत्रार्थ- मणि का चलना, सूई का नियत की ओर सरकना आदि अदृष्ट कारण का संयोग है अथवा अदृष्ट कारण का प्रयत्न है।

इषावयुगपत् संयोगविशेषाः कर्मान्यत्वे हेतुः ॥१५-१६॥

सूत्रार्थ- बाणों में आकाश के विभिन्न क्षेत्रों से विभिन्न संयोगों का एक साथ न होना पहले कर्म के बाद वाले कर्मों का हेतु है। अर्थात प्रारम्भिक कर्म के बाद भी अन्य कर्मों का होना साधक के आधार पर प्रमाणित हो जाता है।

नोदनादाद्यमिषोः कर्म तत्कर्मकारिताच्च संस्कारादुत्तरं तथोत्तरमुत्तरं च ॥१५-१७॥

सूत्रार्थ- और नोदन से बाण का पहला कर्म उत्पन्न होता है और उस कर्म में उत्पन्न अथवा कर्म द्वारा किये गये संस्कार (शोधन अथवा वृद्धि) से कर्म के बाद कर्म उत्पन्न होता रहता है।

संस्काराभावे गुरुत्वात् पतनम् ॥१५-१८॥

सूत्रार्थ- संस्कार का अभाव होने में अथवा होने के बाद गुरुत्व से बाण का नीचे गिरना कर्म है। इस प्रकार आत्मा का प्रयत्न ही मूल कारण है।

मण्डल-16

नोदनभिघातात् संयुक्तसंयोगाच्च पृथिव्यां कर्म ॥१६-१॥

सूत्रार्थ- नोदन की नियत चोट होने से तथा संयुक्त संयोग होने से पृथिवी द्रव्य में कर्म होता है।

तद्विशेषेणादृष्टकारितम् ॥१६-२॥

सूत्रार्थ- उस कर्म का विशेषवान होना अदृष्ट कारण के द्वारा किया जाता है। अर्थात अदृष्ट प्रयत्न कारण है।

अपां संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् ॥१६-३॥

सूत्रार्थ- जलों का अन्य बाधक से संयोग न होने पर जलों में गुरुत्व होने से जलों का गिरना कर्म है।

तद्विशेषेणादृष्टकारितम् ॥१६-४॥

सूत्रार्थ- उस कर्म का विशेषवान होना अदृष्ट द्वारा किया जाता है अर्थात अदृष्ट प्रयत्न कारण है।

द्रवत्वात् स्यन्दनम् ॥१६-५॥

सूत्रार्थ- तरलता होने से बहना अथवा रिसना अथवा टपकना है।

नाड्यो वायुसंयोगादारोहणम् ॥१६-६॥

सूत्रार्थ- सूर्य की किरणों की सहायता से वायु का संयोग होने से जलों का ऊपर चढ़ना कर्म होता है।

नोदनापीडनात् संयुक्तसंयोगाच्च ॥१६-७॥

सूत्रार्थ- नोदन का दबाव होने से तथा संयुक्त संयोग होने से भी आरोहण होता है।

वृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारितम् ॥१६-८॥

सूत्रार्थ- वृक्ष की ओर जल का सरकना आदि के कारण अदृष्ट होते हैं अर्थात कारण अन्यत्र होता है।

अपां सङ्घातो विलयनं च तेजः संयोगात् ॥१६-९॥

सूत्रार्थ- अग्नि का संयोग होने से जलों का जमना तथा पिघलना होता है अर्थात कारण अन्यत्र नहीं होते हैं।

अपां संयोगाद्विभागाच्च स्तनयित्नोः ॥१६-१०॥

सूत्रार्थ- जलों का संयोग होने तथा विभाग होने से बादलों का संयोग तथा विभाग होता है।

तत्र च विस्फूर्जथुर्लिङ्गम् ॥१६-११॥

सूत्रार्थ- वहाँ आकाश में बादलों का गर्जना तथा बिजली का कौंधना उसके संयोग विभाग अथवा तेज के संयोग विभाग के साधक होते हैं।

वैदिकं च ॥१६-१२॥

सूत्रार्थ- ऐसा वेद वर्णन से भी प्रमाणित होता है अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान से भी प्रमाणित है।

पृथिवीकर्मणा तेजःकर्म वायुकर्म च व्याख्यातम् ॥१६-१३॥

सूत्रार्थ- अग्नि तथा वायु के कर्म भी पृथिवी के कर्म से जान लिये जाते हैं।

अग्नेरूर्ध्वं ज्वलनं वायोस्तिर्य्यग्गमनमणूनां मनसश्चाद्यं कर्मेत्येदृष्टकारितम् ॥१६-१४॥

सूत्रार्थ- अग्नि का ऊपर की ओर होकर जलना, वायु का वक्र गति से चलना, अणुरूप होना (परमाणुओं का संयोग होना) तथा मन का पहला कर्म आदि के कारण अदृष्ट होते हैं अर्थात कारण अन्यत्र होते हैं।

हस्तकर्मणा मनसः कर्म व्याख्यातम् ॥१६-१५॥

सूत्रार्थ- हस्तकर्म के द्वारा मन का कर्म जान लिया जाता है अर्थात शरीरांग के कर्म मन के अनुरूप होते हैं।

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षात् सुखदुःखे ॥१६-१६॥

सूत्रार्थ- आत्मा, इन्द्रिय, मन तथा विषय पदार्थों का निकट सम्पर्क होने से सुख तथा दुःख की उत्पत्ति होती है।

तदनारम्भश्च आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दुःखाभावः संयोगः ॥१६-१७॥

सूत्रार्थ- यदि दुःख निवृत्ति (दुःख से मुक्ति) ही परमार्थ है, तो उस सुख दुःख की अनुत्पत्ति से शरीर को दुःख से मुक्ति हो जाती है, क्योंकि आत्मस्थ मन के द्वारा इन्द्रियों से सम्पर्क सम्भव नहीं है और विषय की अनुभूतियों से शरीर प्रभावित नहीं होता है। विषय की विद्यमानता को अस्वीकार नहीं किया गया है। शरीर और दुःख निवृत्ति का संयोग ही उस कर्म की अनुत्पत्ति है। तदनारम्भाश्च के दो अर्थ विचारणीय हैं "और उसकी अनुत्पत्ति" अथवा "वह तथा अनुत्पत्ति"। अर्थात आत्मस्थ मन में शरीर का दुःखनिवृत्ति रूप संयोग ही तदनारम्भ होता है। संयोग शब्द का अभिप्राय योग (स योग) से सादर असहमति है। व्याख्या के लिये 'वैशेषिक भाष्य' नामक ग्रन्थ भी उपयोगी है।

कायकर्मणाऽऽत्मकर्म व्याख्यातम् ॥१६-१८॥

सूत्रार्थ- जिस प्रकार विषय पदार्थों के ग्रहण करने से शरीर में श्वसन, पाचन

आदि कर्म हो जाते हैं, उसी प्रकार विषय पदार्थों के ज्ञान ग्रहण होने से आत्मा कर्म भी हो जाता है अथवा शरीर कर्म जानकर आत्म कर्म जाना जाता है।

कायकर्मणाऽऽत्मकर्मधर्मयोरनुपपत्तिः ॥१६-१६॥

सूत्रार्थ- जिस प्रकार शरीर में कर्मों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार आत्मा के कर्म तथा धर्म दोनां की उत्पत्ति नहीं है अथवा शरीर के कर्म के द्वारा आत्मा के कर्म तथा धर्म दोनों की उत्पत्ति नहीं है। अर्थात आत्मा के कर्म के द्वारा ही शरीर के कर्म होते हैं। आत्मा में कर्मों की उत्पत्ति का कारण विषय ज्ञान अथवा विषय का चित्र है, जिससे मन का संयोग होने पर आत्मा में प्रयत्न होता है और उससे आत्मा तथा शरीर के कर्म होते हैं।

अपसर्पणमुपसर्पणमशितपीतसंयोगाः कार्यान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्ट-कारितानि ॥१६-२०॥

सूत्रार्थ- शरीर से पदार्थों (सूक्ष्म शरीर) का निकलना, अन्य शरीर में प्रवेश करना, उस अन्य शरीर द्वारा खाये, पिये गये पदार्थों से शरीर के अन्दर संयोग होना तथा दूसरे कार्यरूप शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि से संयोग होना अदृष्ट कारण से होता है। अदृष्ट से दिखायी न देने वाला द्रव्य ही होता है। निरात्मा में निर्जीव सूक्ष्म पदार्थ तथा आत्मावान में भी निर्जीव सूक्ष्म पदार्थ है, जो आत्मा से सम्बद्ध रहता है और कर्म से उस निर्जीव सूक्ष्म पदार्थ की वृद्धि और क्षरण होता है। क्षरणान्तर अन्तिम पदार्थरूप ओज के समान आत्मा है।

तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः ॥१६-२१॥

सूत्रार्थ- संयोग का अभाव हो जाता है तथा प्रादुर्भाव (पुनर्जन्म) नहीं होता है, यह मोक्ष कहलाता है। जब उस अदृष्ट कारण का अभाव हो जाता है।

दिक्कालावकाशं च क्रियावद् वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि ॥१६-२२॥

सूत्रार्थ- दिशा, काल तथा आकाश का द्रव्यों का क्रियास्वरूप होना उनकी क्रियावान द्रव्यों से विधर्मता होने से होते हैं अर्थात इनसे कर्म की उत्पत्ति नहीं है।

एतेन कर्माणि गुणाश्च व्याख्याताः ॥१६-२३॥

सूत्रार्थ- इसी से कर्मों तथा गुणों की निष्क्रियता की व्याख्या है, क्योंकि उनकी भी विधर्मता है। गुण तथा कर्म में गुण कर्म नहीं होता है।

निष्क्रियाणां समवायः कर्मभ्यो निषिद्धः ॥१६-२४॥

सूत्रार्थ- निष्क्रिय पदार्थों का कर्म के द्वारा समवाय होना मान्य नहीं है।

कारणं त्वसमवायिनो गुणाः ॥१६-२५॥

सूत्रार्थ- गुण तो असमवायि कारण ही होते हैं।

गुणैर्दिग्व्याख्याता ॥१६-२६॥

सूत्रार्थ- गुण के समान दिशा की व्याख्या है।

कारणेन कालः ॥१६-२७॥

सूत्रार्थ- कारण के अन्तर्गत काल की व्याख्या है अर्थात काल भी कारण है।

मण्डल-17

द्रव्येषु ज्ञानं व्याख्यातम् ॥१७-१॥

सूत्रार्थ- द्रव्यों में ज्ञान का होना बताया गया।

तत्रात्मा मनश्चाप्रत्यक्षे ॥१७-२॥.

सूत्रार्थ- उन द्रव्यों से आत्मा तथा मन को अप्रत्यक्ष बताया गया।

ज्ञाननिर्देशे ज्ञाननिष्पत्तिविधिरूक्ताः ॥१७-३॥

सूत्रार्थ- ज्ञान के कथन से ज्ञान की उत्पत्ति अब बतायी जाती है।

आत्ममनसी कारणे व्याख्याते ॥१७-४॥

सूत्रार्थ- कारण के अन्तर्गत आत्मा तथा मन को बताया गया है अर्थात आत्मा तथा मन दोनों कारण होते हैं।

गुणकर्मसु सन्निकृष्टेषु ज्ञाननिष्पत्तेर्द्रव्यं कारणम् ॥१७-५॥

सूत्रार्थ- गुणों तथा कर्मों में द्रव्य के सन्निकृष्ट (सम्पर्क) में होने पर ज्ञान उत्पन्न होने से द्रव्य कारण होते हैं।

सामान्यविशेषेषु सामान्यविशेषाभावात्तदेव ज्ञानम् ॥१७-६॥

सूत्रार्थ-सामान्य विशेषों में सामान्य विशेष के न होने से ही ज्ञान हो जाता है।

सामान्यविशेषापेक्षं द्रव्यगुणकर्मसु ॥१७-७॥

सूत्रार्थ- द्रव्य, गुण तथा कर्म में ज्ञान के लिये सामान्य विशेष की अपेक्षा होती है।

द्रव्ये द्रव्यगुणकर्मापेक्षम् ॥१७-८॥

सूत्रार्थ-द्रव्य में ज्ञान के लिये द्रव्य, गुण तथा कर्म की अपेक्षा (सहयोग) होती है।

गुणकर्मसु गुणकर्माभावाद् गुणकर्मापेक्षं न विद्यते ॥१७-९॥

सूत्रार्थ- गुण तथा कर्म में ज्ञान के लिये गुण तथा कर्म का अभाव होने से गुण तथा कर्म की अपेक्षा नहीं होती है।

समवायिनः श्वैत्याच्छ्वैत्यबुद्धेश्च श्वेते बुद्धिस्ते एते कार्यकारणभूते ॥१७-१०॥

सूत्रार्थ- समवेत श्वेतगुण से तथा श्वेतगुण के ज्ञान से श्वेतद्रव्य में ज्ञान होता है। वे तथा ये (श्वेत तथा श्वेतता) ज्ञान दोनों का परस्पर कार्यकारण सम्बन्ध नहीं है अर्थात गुण तथा कर्म ज्ञान में गुण कर्म की अपेक्षा नहीं होती है।

द्रव्येष्वनितरेतरकारणाः ॥१७-११॥

सूत्रार्थ- द्रव्यों के ज्ञान में कार्य कारण सम्बन्ध कारण नहीं होता है।

कारणायौगपद्यात् कारणक्रमाच्च घटपटादिबुद्धीनां क्रमो न हेतुफलभावात् ॥१७-१२॥

सूत्रार्थ- ज्ञान के कारणों का एक साथ न होने तथा कारण का क्रम होने से घट पट आदि के ज्ञानों में एक क्रम होता है, न कि कारण का फल (कार्य) होने से होता है।

तथा द्रव्यगुणकर्मसु कारणविशेषात् ॥१७-१३॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार द्रव्य, गुण तथा कर्म में कारण विशेष (अलग) होने से ज्ञान होता है।

अयमेष त्वया कृतं भोजयैनमिति बुद्ध्यपेक्षम् ॥१७-१४॥

सूत्रार्थ- यह है, वह है, तुम्हारे द्वारा किया जाना, इसको भोजन कराओ आदि में ज्ञान की अपेक्षा है।

दृष्टेषु भावाददृष्टेष्वभावात् ॥१७-१५॥

सूत्रार्थ- दृष्ट पदार्थों में ज्ञान होने से तथा अदृष्ट में ज्ञान न होने से ज्ञान का होना तथा न होना कहा जाता है। अतः ऐसे ज्ञानों में बुद्धि की अपेक्षा कहा गया है।

द्रव्येषु च पञ्चात्मकत्वं प्रतिषिद्धम् ॥१७-१६॥

सूत्रार्थ- और द्रव्यों में पंचात्मकता (पांच का समवाय) को नहीं माना गया है।

भूयस्त्वाद्गन्धवत्त्वाच्च पृथिवी गन्धज्ञाने प्रकृतिः ॥१७-१७॥

सूत्रार्थ- पृथिवी द्रव्य की अधिकता होने से तथा गन्धवती होने से गन्ध के ज्ञान में पृथिवी समवाय कारण है।

तथापस्तेजोवायुश्च रसरूपस्पर्शाविशेषात् ॥१७-१८॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार रस के ज्ञान में जल, रूप के ज्ञान में अग्नि तथा स्पर्श के ज्ञान में वायु कारण है क्योंकि रस, रूप तथा स्पर्श गुण का ज्ञान इनसे अलग नहीं होता है।

मण्डल-18

आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम् ॥१८-१॥

सूत्रार्थ- आत्मा में आत्मा तथा मन दोनों के संयोग विशेष (निरन्तर अथवा एकाग्र) से आत्मा का ज्ञान (प्रत्यक्ष) होता है।

तथा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षम् ॥१८-२॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार अन्य द्रव्यों (द्रव्य भेदों) का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। अर्थात आत्मा तथा अन्य समस्त का अनुमान आवश्यक नहीं है। ब्रह्म अथवा सूक्ष्म रूप ईश्वर का भी प्रत्यक्ष होता है।

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षाच्च ॥१८-३॥

सूत्रार्थ- और आत्मा, इन्द्रिय, मन तथा विषयों का सन्निकर्ष होने से भी समस्त का प्रत्यक्ष होता है।

असमाहितान्तःकरणा उपसंहृतसमाधयस्तेषां च ॥१८-४॥

सूत्रार्थ- असमाहित अन्तःकरण वाले (आत्मा में मन को स्थित करने का प्रयास करने वाले) तथा समाधि अवस्था को प्राप्त करने वाले दोनों को भी ऐसा ही प्रत्यक्ष हो जाता है।

तत्समवायात् कर्मगुणेषु ॥१८-५॥

सूत्रार्थ- द्रव्यों में समवाय होने से समवेत कर्मों तथा गुणों का भी प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। परमाणु के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवों का भी प्रत्यक्ष हो जाता है।

आत्मसमवायादात्मगुणेषु ॥१८-६॥

सूत्रार्थ- आत्मा में समवाय होने से आत्मा में समवेत गुणों का प्रत्यक्ष हो जाता है।

अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैङ्गिकम् ॥१८-७॥

सूत्रार्थ- यह इसका कार्य है, कारण है, संयोगी है, विरोधी है तथा समवायि है आदि के आधार पर होने वाला ज्ञान अनुमानिक होता है।

अस्येदं कार्यकारणसम्बन्धश्चावयवाद्भवति ॥१८-८॥

सूत्रार्थ- यह इसका साधक है (साध्य साधक सम्बन्ध) तथा कार्य कारण सम्बन्ध अवयव होने से ऐसा ज्ञान होता है।

एतेन शाब्दं व्याख्यातम् ॥१८-९॥

सूत्रार्थ- इसी आधार पर शब्द से होने वाला ज्ञान बताया गया है।

लैङ्गिकं प्रमाणं व्याख्यातम् ॥१८-१०॥

सूत्रार्थ- अनुमानिक ज्ञान में प्रत्यक्ष साधक ही प्रमाण होता है और उससे सम्बन्ध के आधार पर साध्य का प्रमाणित होना बताया गया है।

हेतुरपदेशो लिङ्गं निमित्तं प्रमाणं करणमित्यनर्थान्तरम् ॥१८-११॥

सूत्रार्थ-हेतु, अपदेश, लिंग, निमित्त, प्रमाण, करण आदि समान अर्थक होते हैं।

अस्येदमिति बुद्ध्यपेक्षितत्वात् ॥१८-१२॥

सूत्रार्थ- यह इसका है, ऐसा ज्ञान होने का कारण बुद्धि की अपेक्षता है।

आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिः ॥१८-१३॥

सूत्रार्थ- आत्मा तथा मन दोनों संयोग के विशेष (निरन्तर, एकाग्र) होने से तथा संस्कार (त्वरण, वृद्धि) होने से स्मृति ज्ञान होता है।

तथा स्वप्नः स्वप्नान्तिकम् च ॥१८-१४॥

सूत्रार्थ- उसी प्रकार स्वप्न ज्ञान होता है और स्वप्नान्तिक (स्वप्न के बाद में स्वप्न का) ज्ञान होता है।

धर्माच्च ॥१८-१५॥

सूत्रार्थ- और धर्म से भी ऐसा ज्ञान होता है।

इन्द्रियदोषादविद्या ॥१८-१६॥

सूत्रार्थ- इन्द्रियों में दोष होने से अविद्या (अज्ञान) होता है।

संस्कारदोषाच्च ॥१८-१७॥

सूत्रार्थ- संस्कार में दोष होने से भी ज्ञान का न होना है।

तद् दुष्टज्ञानम् ॥१८-१८॥

सूत्रार्थ- वह अविद्या सदोष (दूषित) ज्ञान होता है।

अदुष्टं विद्या ॥१८-१९॥

सूत्रार्थ- ज्ञान का दोष रहित होना विद्या है।

आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः ॥१८-२०॥

सूत्रार्थ- आर्ष (पूर्व प्राप्त ज्ञान संकलनों में वर्णित) ज्ञान तथा ज्ञान प्राप्त पुरुषों से प्राप्त ज्ञान उनके (प्राप्तकर्ता) धारण करने के अनुसार होता है।

द्रव्यगुणकर्मसु अर्थ इति ॥१८-२१॥

सूत्रार्थ- इस प्रकार द्रव्यों, गुणों तथा कर्मों के अन्तर्गत समस्त पदार्थ होते हैं जिनका ज्ञान होता है, क्योंकि पदरूप में प्रकट होते हैं।

सृष्टेष्वपि धर्माः तदभावादधर्माख्यामिति ॥१८-२२॥

सूत्रार्थ- इस प्रकार ग्रन्थ का समापन भी धर्म से ही करते हुए महर्षि गार्ग्य उर्फ कणाद कहते हैं कि समस्त सृष्टियों में भी धर्म होते हैं। उस धर्म का अभाव होने से अधर्म कहा जाता है।

इति महर्षि गार्ग्य अपर नाम प्रसिद्ध कणाद दृष्ट वैशेषिक शास्त्रः।

इसप्रकार महर्षि गार्ग्य उर्फ कणाद द्वारा दृष्ट वैशेषिक शास्त्र का समापन होता है।

0000000

स्निग्धा जननी दिव्या, भगवती परमेश्वरी।
ओमप्रकाशशर्मासीत्, जनकः सैन्यनायकः।।
फगौता ग्राम वास्तव्या, पूर्वजाश्चद्विजोत्तमाः।
एतेषां चरणयोर्नत्वा, क्रियते वैशेषिकी मया।।
गार्ग्य कणाद विशेषवादि ऋषिणादि वैशेषिके।
पुनः व्यवस्थां कृतवानत्र शिवानन्दाभिधः।।

परिशिष्ट-१

कणाद जी का परिचय

विज्ञान की पुस्तकों में जिनको महान प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक तथा ऋषि कहा जाता है, दर्शन के इतिहासकारों के द्वारा वैशेषिकदर्शन का प्रवर्तक कहा जाता है, उनको ही उलूक, उलूक पुत्र, उलूक शिष्य, काश्यप, आदि अशोभनीय नाम से भी पुकारा जाता है अर्थात मात्र यही परिचय बताया जाता है। वैशेषिक पुनर्व्यवस्था में उनके जीवन वृत्त को भी पुनर्व्यवस्थित किया गया है, जो इतिहास के पन्नों से ही स्पष्ट प्रकट होता है।

उपलब्ध इतिहास के अनुसार वेद (समस्त ज्ञान) की उत्पत्ति एवं उसका क्रमिक विकास सृष्टि के समान्तर ही होता है, जिसकी व्यवस्था एवं पुनर्व्यवस्था होने से ही वेद अनेक स्वरूप में अलग-अलग नाम से उपलब्ध होता रहा है। प्राचीन संदर्भ के अनुसार स्वर्गलोक की अप्सरा उर्वशी के वियोग से उत्पन्न परिस्थितयों में भारतीय प्राचीन सम्राट (वर्तमान प्रलय पश्चात् सृष्टि में) पुरूरवा के द्वारा श्रुतियों को संकलित किया गया था और ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के नाम से वेद के तीन भेद तथा तीन अग्नि के भेद का प्रचलन उनके द्वारा की गयी पुनर्व्यवस्था का ही परिणाम है, जिसको सतयुग में सम्पन्न कहा जा सकता है। तत्पश्चात द्वापर युग में श्रुतियों को चार भेदों में प्रस्तुत करके कृष्ण द्वैपायन जी 'वेद व्यास' कहलाये अर्थात अथर्व वेद भी श्रुतियों का ही अलग स्वरूप संकलन है। श्रुतियों की पुनर्व्यवस्था करने वाले पुरुषों को बह्वृच कहा जाता है। श्रुतियों के रचनाकार ऋषियों को दृष्टा कहा जाता है।

समस्त श्रुतियों स्मृतियों में समस्त समाज अथवा सृष्टि की अपेक्षा के अनुसार समस्त प्रकार के सुख और आनन्द की प्राप्ति के समाधान है तथा उनके प्रक्रिया स्वरूप को ही यज्ञ कहा जाता है। प्रक्रिया को समझाने के लिये विभिन्न प्रकार के नियम उपनियम भी श्रुतियों के समानान्तर ही बनते रहे है। उनके संकलन ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाते है अर्थात श्रुतियाँ तथा ब्राह्मण दोनों वेद के ही दो प्राचीनतम भेद है। अन्य शास्त्र, स्मृति आदि पश्चात् की रचनायें है। अर्थात वर्तमान वैदिक पुनर्व्यवस्था से भी 'ब्राह्मण' प्राचीन है, परन्तु उनका ग्रन्थ स्वरूप होना ऋग्वेद के पश्चात माना जा सकता है।

शास्त्रों में न्यायशास्त्र सबसे पश्चात् का होना सर्वमान्य है और ब्रह्मसूत्र (वेदान्त सूत्र अथवा व्यास सूत्र) में अन्य सभी शास्त्रों का संदर्भ होने

से न्याय शास्त्र से प्राचीन तथा अन्य शास्त्रों में अर्वाचीन सिद्ध होता है। यद्यपि योगशास्त्र में संदर्भ नहीं है, तथापि 'ईश्वर' का संदर्भ तथा सांख्य शास्त्र का अनुगामी (पूरक) मानने से सांख्य शास्त्र से अर्वाचीन सिद्ध होता है। सांख्य शास्त्र में वैशेषिक शास्त्र का स्पष्ट संदर्भ होने से वैशेषिक शास्त्र प्राचीन सिद्ध होता है और वैशेषिक में मात्र 'ब्राह्मण' का ही संदर्भ है, जो वर्तमान शतपथ नामक आदि ग्रन्थों से भिन्न एवं प्राचीन है। शतपथ आदि की रचना वर्तमान पुनर्व्यवस्थित वेद संकलन के पश्चात्वर्ती ही मानी जाती है और संकलनकर्ता होने से कृष्णद्वैपायन जी वैशेषिक शास्त्रकर्त्ता से अर्वाचीन सिद्ध हो जाते है।

इतिहास के अनुसार कृष्ण द्वैपायन जी भरद्वाज (भरतपुत्र) वंशज देवव्रत (भीष्म पितामह) के समकालीन सिद्ध होते है अर्थात शास्त्रकर्ता उन दोनों के पूर्वकालीन सिद्ध होते है तथा अथर्ववेद के अग्निसूक्त तथा नक्षत्र सूक्त की श्रुतियां भी उनसे प्राचीन है, जिनके 'द्रष्टा' गार्ग्य को बताया गया है। वैदिक श्रुतियों में विषय की असमानता के कारण विभाग मिलते है अर्थात उनमें कुछ वैदिक विषय है। दोनों सूक्तों का विषय वैशेषिक शास्त्र के समान भी है। शास्त्रकर्त्ता तथा द्रष्टा की समकालीनता सिद्ध हो जाती है। वृहदारण्यक तथा कौशितिकि ब्राह्मण उपनिषदों में प्राप्त गार्ग्य तथा अजातशत्रु (बौद्ध राजा) के संवाद का विषय में भी समानता है, परन्तु ऐसे अन्य गार्ग्य भी अलग भी है तथा कालानुसार उनके ऐसे ही शिष्य अथवा नामक है, जिनके द्वारा पाणिनी को भी परास्त किया गया था।

इतिहास के अनुसार वर्णाश्रम व्यवस्था को श्रेष्ट कहा गया है। उसमें विकृति होने पर पुनर्स्थापना होती रही है। अर्थात विरोधी समुदाय को पुनः उसी धारा में लाने का कार्य क्षत्रिय वर्ण वाले शंकर के द्वारा किया गया है और उसकी स्थापना विष्णु के द्वारा की गयी है। शासन व्यवस्था में सुधार परिवर्तन तथा विरोध क्षत्रिय वर्ण के द्वारा भी हुआ है। राजा ययाति के द्वारा जिस संगठन प्रणाली का सफल प्रयोग किया गया था, उनके बाद वही स्वरूप बौद्ध सम्प्रदाय में देखने को मिलता है और उसका परिष्कृत स्वरूप लोकतन्त्र के जनक चाणक्य मत को कहा जा सकता है। परन्तु बौद्धों से अति प्राचीन राजा गार्ग्य के द्वारा भी इसका महत्त्व समझा गया, क्योंकि वे भी ययाति के ही वंशज है और प्राप्त परम्परा के अनुसार उनके द्वारा भी अन्य पूर्वजों के समान ही क्षत्रियधर्म का त्याग करके ब्राह्मण धर्म ग्रहण करना सिद्ध होता है।

प्रशस्त पादजी के अनुसार शास्त्र के दो प्रसिद्ध नाम कणाद तथा काश्यप सिद्ध होते है। शेष उलूक आदि नाम उनके पश्चात्वर्ती विद्वानों की

निराधार तथा अशोभनीय भावना के परिणाम मात्र है। काश्यप नाम का कम प्रचलन तथा असंगत कल्पना (उपहासिक) है। सृष्टि का एक अलग सिद्धान्त देने से तथा कणज्ञ होने स कणाद नाम प्रसिद्ध हुआ है और मौलिक नाम गार्ग्य ही सिद्ध होता है, जो गर्ग तथा गार्गी से अलग है। इनके द्वारा स्थापित सम्प्रदाय तथा गोत्र का अधिक विस्तार न होने का कारण उनकी कमजोर संगठन प्रणाली, अधिक आध्यात्मिकता, मात्र भौतिकवादी समझना, ब्राह्मणों द्वारा ग्रहण न किया जाना आदि ही है। शैव तथा बौद्ध मानने का भी ऐसा कारण स्पष्ट होता है, जबकि शास्त्रकर्त्ता का वेदज्ञ होना, वैदिक द्रष्टा होना, साम्प्रदायिक एकता का प्रतीक होना, पाणिनी तथा यास्क से पूर्वकालीन व्याकरणकार, निरूक्तकार होना सिद्ध होता है। सूत्र शैली के प्राचीन प्रयोगकर्त्ता, शून्य परिमाण के जनक, 'विशेष' तथा परमाणु आदि कणों के अविष्कारक भी सिद्ध होते है। विज्ञान के लिये उपयोगी सृष्टि की अलग प्रक्रिया है।

यद्यपि उस समय जातियाँ नहीं थीं फिर भी यह माना जा सकता है कि कणाद केवल क्षत्रिय ही नहीं हैं, अपितु श्रेष्ठ क्षत्रिय है, केवल क्षत्रोपेत ब्राह्मण ही नहीं है, अपितु श्रेष्ठ ब्राह्मण है, केवल परम सेवक शुद्र ही नहीं, अपितु श्रेष्ठ शुद्र है, परन्तु वैश्य नहीं है अन्यथा आजीविका का टोटा नहीं रहता। चीनी लेखक के अनुसार कणाद जी के द्वारा पदार्थो का छः अथवा दस आदि होना निर्धारित नहीं किया गया अपितु अपने अन्तिम समय में बनारसवासी मानवका नामक ब्राह्मण के पुत्र तव शिखी (आसुरि शिष्य पंचाशिख से भिन्न) नामक शिष्य को समझाया था जिसके द्वारा पदार्थों का छः होना निर्धारित किया गया था और प्रचलित उपस्कार नामक संकलन उस पर आधारित है। चीनी, शारदा, देवनागरी, गुजराती तथा संस्कृत लिपि में भी यही सूत्र उपलब्ध है। अठारह वैशेषिक पन्थों में से चन्दमति नामक आर्चाय की चीनी भाषा में एक पन्थ का ग्रन्थ "दर्शपदार्थो" भी उपलब्ध है। फिर भी यह माना जा सकता है कि आज सूत्रों की पूर्णतः उपलब्धता नहीं है और उपलब्धता सम्भव भी नहीं है। अतः प्रस्तुत वैशेषिक शास्त्र को सूत्र स्वरूप मानकर उपलब्ध सूत्रों को ही आध्यात्मिक, तथा लौकिक बनाया जा सकता है और वैज्ञानिकों को एक चिन्तन प्रवाह दिया जा सकता है।

अधिक जानकारी "वैशेषिक पुर्नव्यवस्था' नामक लेखक के ग्रन्थ से अथवा लेखक से की जा सकती है।

परिशिष्ट-२

उपस्कार में प्राप्त सूत्रों की तालिका

अ01	
आ01	कहाँ
1	2-1
2	2-2
3	2-3
4	2-6,7
5	2-9
6	2-11
7	2-13
8	5-1
9	5-2
10	5-3,4
11	5-5
12	5-6
13	5-7
14	5-8
15	2-8
16	2-10
17	2-12
18	5-9
19	5-10
20	5-11
21	5-12
22	5-12
23	5-14
24	5-16
25	5-17
26	5-18
27	5-19
28	5-20
29	5-21
30	5-22
31	5-23
अ01	
आ02	कहाँ
1	3-13
2	3-14
3	2-16
4	2-17
5	2-18
6	2-19
7	2-20
8	2-21
9	2-23
10	2-24
11	2-26
12	2-28
13	2-29
14	2-30
15	2-31
16	2-32
17	2-25
अ02	
आ01	कहाँ
1	11-1
2	11-2
3	11-3
4	11-4
5	11-5
6	11-6
7	11-7
8	11-13
9	11-14
10	11-15
11	11-23
12	11-24
13	11-25
14	11-16
15	11-17
16	11-18
17	11-19
18	11-20
19	11-21
20	11-26
21	11-27
22	11-28
23	11-29
24	11-30
25	11-31

26	11-33
27	11-34
28	11-35
29	11-36
30	11-38
31	11-38
अ02	
आ02	कहाँ
1	11-8
2	11-9
3	11-12
4	11-10
5	11-11
6	12-1
7	12-2
8	12-3
9	12-5
10	12-6
11	12-9
12	12-10
13	12-11
14	12-7
15	12-8
16	12-12
17	9-1
18	9-4
19	9-3
20	9-6
21	9-7
22	9-10
23	9-11
24	9-12
25	9-13
26	9-14
27	9-15
28	9-18
29	9-19
30	9-21
31	9-8
32	9-22
33	9-23
34	9-25
35	9-26
36	9-27
37	9-28
अ03	
आ01	कहाँ
1	13-1
2	13-3
3	13-4
4	13-5
5	13-7
6	13-8
7	13-9
8	13-10
9	13-11
10	13-12
11	13-14
12	13-15
13	13-16
14	13-18
15	13-19,20
16	13-21
17	13-22
18	13-23
19	13-24
अ03	
आ02	कहाँ
1	13-43
2	13-44
3	13-45
4	13-25
5	13-42
6	13-26
7	13-27
8	13-28
9	13-29
10	13-30
11	13-31
12	13-32
13	13-33
14	13-34
15	13-35
16	13-36
17	13-37
18	13-38
19	13-39
20	13-40
21	13-41

अ04

आ01	कहाँ
1	10-11
2	10-42
3	10-13
4	10-14
5	10-15
6	10-2
7	10-3
8	10-5
9	10-6
10	10-7
11	10-8
12	10-9
13	10-10

अ04

आ02	कहाँ
1	14-1
2	14-2
3	14-3
4	14-5
5	14-7
6	14-8
7	14-10
8	14-12
9	14-13
10	14-14
11	14-15

अ05

आ01	कहाँ
1	15-1
2	15-2
3	15-3
4	15-4
5	15-5
6	15-6
7	15-7
8	15-8
9	15-9
10	15-10
11	15-11
12	15-12
13	15-13
14	15-14
15	15-15
16	15-16
17	15-17
18	15-18

अ05

आ02	कहाँ
1	16-1
2	16-2
3	16-3
4	16-5
5	16-6
6	16-7
7	16-8
8	16-9
9	16-11
10	16-12
11	16-10
12	16-13
13	16-14
14	16-15
15	16-16
16	16-17
17	16-20
18	16-21
19	3-15
20	3-16
21	16-22
22	16-23
23	16-24
24	16-25
25	16-26
26	16-27

अ06

आ01	कहाँ
1	1-1
2	1-3
3	1-4
4	1-5
5	1-7
6	1-9
7	1-10
8	1-11
9	1-12
10	1-15

11 1-14
12 1-17
13 1-18
14 1-19
15 1-20
16 1-21
अ06
आ02 कहाँ
1 1-22
2 1-24
3 1-25
4 1-26
5 1-27
6 1-28
7 1-29
8 1-30,31
9 1-32
10 1-33
11 1-34
12 1-36
13 1-38
14 1-39
15 1-40
16 1-41
अ07
आ01 कहाँ
1 6-1
2 6-4
3 6-7
4 6-8
5 6-9
6 6-10
7 6-13
8 6-15
9 6-16
10 6-17
11 6-18
12 6-19
13 6-20
14 6-21
15 6-23,23
16 6-24
17 6-25
18 6-26
19 6-27
20 6-28
21 6-29
22 6-30,31
23 6-32
24 6-33
25 6-34
अ07
आ02 कहाँ
1 7-1
2 7-2
3 7-5
4 7-7
5 7-8
6 7-9
7 7-10
8 7-11
9 7-12
10 7-13
11 7-14
12 7-15
13 7-16
14 7-17
15 7-18
16 7-19
17 7-20
18 7-21
19 7-22
20 7-26
21 7-27
22 7-28
23 7-29
24 7-30
25 7-30
26 2-33
27 2-34
28 2-35
अ08
आ01 कहाँ
1 17-1
2 17-2
3 17-3
4 17-5
5 17-6
6 17-7
7 17-8

8 17-9
9 17-10
10 17-11
11 17-12
अ08
आ02 कहाँ
1 17-14
2 17-15
3 17-21
4 17-16
5 17-17
6 17-18
अ09
आ01 कहाँ
1 3-2
2 3-3
3 3-1
4 3-4
5 3-5
6 3-6
7 3-7
8 3-8
9 3-9
10 3-10
11 18-1
12 18-2
13 18-4
14 18-5
15 18-6
अ09
आ02 कहाँ
1 18-7
2 18-8
3 18-9
4 18-11
5 18-12
6 18-13
7 18-14
8 18-14
9 18-15
10 18-16
11 18-18
12 18-19
13 18-20
अ010
आ01 कहाँ
1 8-2
2 8-3
3 8-4
4 8-8
5 8-9
6 8-10
7 8-11
अ010
आ02 कहाँ
1 4-1
2 4-2
3 4-3
4 4-4
5 4-5
6 4-6
7 4-8
8 1-23
9 2-3

परिशिष्ट-३

मिथिला संकलन (अ०कृ०) में प्राप्त सूत्रों की तालिका

अ01	
आ01	कहाँ
1	2-1
2	2-2
3	2-3
4	2-9
5	2-11
6	2-13
7	5-1
8	5-3
9	5-4
10	5-5
11	5-6
12	5-7
13	3-13
14	3-14
15	2-8
16	2-10
17	2-12
18	5-9
19	5-10
20	5-11
21	5-12
22	5-13
23	5-14
24	5-15
25	5-17
26	5-18
27	5-19
28	5-20
29	5-21
30	5-22
31	5-23
अ01	
आ02	कहाँ
1	3-13
2	3-14
3	2-16
4	2-17
5	2-18
6	2-19
7	2-20
8	2-21
9	2-23
10	2-26
11	2-28
12	2-29
13	2-30
14	2-31
15	2-32
16	2-25
अ02	
आ01	कहाँ
1	11-1
2	11-2
3	11-3
4	11-4
5	11-5
6	11-6
7	11-7
8	11-13
9	11-14
10	11-15
11	11-23
12	11-25
13	11-16
14	11-17
15	11-18
16	11-19
17	11-20
18	11-21
19	11-26
20	11-27
21	11-28
22	11-29
23	11-21
24	11-30
25	11-31
26	11-31
27	11-33
28	11-34

29 11-33
30 11-34
31 11-35
32 11-36
अ02
आ02 कहाँ
1 11-8
2 11-12
3 11-9
4 11-10
5 11-11
6 12-1
7 12-4
8 12-5
9 12-5
10 12-6
11 12-10
12 12-11
13 12-7
14 12-7
15 12-7
16 12-12
17 9-1
18 9-2
19 9-3
20 9-5
21 9-6
22 9-7
23 9-11
24 9-12
25 9-13
26 9-14
27 9-15
28 9-20
29 9-21
30 9-8
31 9-22
32 9-23
33 9-24
34 9-26
35 9-27
36 9-28
37 9-26
अ03
आ01 कहाँ
1 13-1
2 13-2
3 13-3
4 13-4
5 13-5
6 13-6
7 13-8
8 13-9
9 13-10
10 13-11
11 13-12
12 13-13
13 13-14
14 13-15
15 13-16
16 13-17
17 13-18
18 13-19
19 13-20
20 13-23
21 13-24
अ03
आ02 कहाँ
1 13-43
2 13-44
3 13-45
4 13-25
5 13-42
6 13-26
7 13-27
8 13-28
9 13-29
10 13-30
11 13-33
12 13-34
13 13-37
14 13-39
अ04
आ01 कहाँ
1 10-11
2 10-12
3 10-13
4 10-15
5 10-1
6 10-2

7	10-4
8	10-6
9	10-7
10	10-8
11	10-9
12	10-10
अ04	
आ02	कहाँ
1	14-2
2	14-4
3	14-6
4	14-5
5	14-7
6	14-9
7	14-10
8	14-11
9	14-12
10	14-13
अ05	
आ01	कहाँ
1	15-1
2	15-3
3	15-4
4	15-5
5	15-6
6	15-7
7	15-8
8	15-9
9	15-10
10	15-11

11	15-13
12	15-14
13	15-15
14	15-16
15	15-17
16	15-18
अ05	
आ02	कहाँ
1	16-1
2	16-3
3	16-5
4	16-6
5	16-7
6	16-8
7	16-11
8	16-12
9	16-10
10	16-13
11	16-14
12	16-16
13	16-17
14	16-17
15	16-17
16	16-19
17	16-20
18	16-21
19	3-15
20	16-22
21	16-23
22	16-24

23	16-26
24	16-27
अ06	
आ01	कहाँ
1	1-1
2	1-2
3	1-3
4	1-4
5	1-5
6	1-6
7	1-7
8	1-8
9	1-9
10	1-10
11	1-12
12	1-18
13	1-20
14	1-21
अ06	
आ02	कहाँ
1	1-23
2	1-24
3	1-25
4	1-25
5	1-26
6	1-27
7	1-28
8	1-29
9	1-30
10	1-32

11	1-33
12	1-35
13	1-36
14	1-37
15	1-38
16	1-40
17	1-40
18	1-41

अ07

आ01	कहाँ
1	6-1
2	6-7
3	6-8
4	6-9
5	6-10
6	6-10
7	6-11
8	6-12
9	6-14
10	6-13
11	6-15
12	6-16
13	6-18
14	6-19
15	6-20
16	6-21
17	6-24
18	6-25
19	6-22
20	6-22
21	6-26
22	6-38
23	6-29
24	6-30,31
25	6-32
26	6-33
27	6-34

अ07

आ02	कहाँ
1	7-1
2	7-2
3	7-5
4	7-6
5	7-6
6	7-7
7	7-9
8	7-10
9	7-11
10	7-12
11	7-13
12	7-14
13	7-15
14	7-15
15	7-16
16	7-18
17	7-19
18	7-21
19	7-22
20	7-26
21	7-27
22	7-28
23	7-29
24	7-30
25	7-30
26	2-33
27	2-34
28	2-35

अ08

आ01	कहाँ
1	17-1
2	17-3
3	17-4
4	17-5
5	17-7
6	17-8
7	17-9
8	17-10
9	17-11
10	17-12
11	17-14
12	17-15

अ08

आ02	कहाँ
1	18-21
2	17-16
3	17-17
4	17-18
5	17-18

परिशिष्ट-४

बड़ौदा संकलन (चन्द्रानन्द वृत्ति) में प्राप्त सूत्रों की तालिका

अ01

आ01	कहाँ
1	2-1
2	2-2
3	2-3
4	2-9
5	2-11
6	2-13
7	5-1
8	5-3
9	5-4
10	5-5
11	5-6
12	5-7
13	5-8
14	2-8
15	2-10
16	2-12
17	5-9
18	5-10
19	5-11
20	5-12
21	5-13
22	5-14
23	5-17
24	5-18
25	5-19
26	5-20
27	5-21
28	5-22
29	5-23

अ01

आ02	कहाँ
1	3-13
2	3-14
3	2-16
4	2-17
5	2-18
6	2-19
7	2-20
8	2-21
9	2-22
10	2-23
11	2-24
12	2-27
13	2-28
14	2-29
15	2-30
16	2-31
17	2-32
18	2-25

अ02

आ01	कहाँ
1	11-1
2	11-2
3	11-3
4	11-4
5	11-5
6	11-6
7	11-7
8	11-13
9	11-14
10	11-15
11	11-23
12	11-24
13	11-25
14	11-16
15	11-17
16	11-18
17	11-19
18	11-20
19	11-21
20	11-26
21	11-27
22	11-28
23	11-29
24	11-30,31
25	11-33

26	11-34
27	11-35
28	11-36
अ02	
आ02	कहाँ
1	11-8
2	11-12
3	11-9
4	11-10
5	11-11
6	12-1.
7	12-2
8	12-3
9	12-4
10	12-5
11	12-5
12	12-6
13	12-9
14	12-10
15	12-11
16	12-7
17	12-8
18	12-12
19	9-1
20	9-2
21	9-5
22	9-3
23	9-6
24	9-7
25	9-9
26	9-10
27	9-11
28	9-12
29	9-13
30	9-14
31	9-15
32	9-16
33	9-17
34	9-20
35	9-21
36	9-8
37	9-22
38	9-23
39	9-24
40	9-25
41	9-26
42	9-27
43	9-28
अ03	
आ01	कहाँ
1	13-1
2	13-3
3	13-4
4	13-5
5	13-6
6	13-8
7	13-9
8	13-11 से 17 तक
9	13-18
10	13-19
11	13-20
12	13-21,22
13	13-23
14	13-24
अ03	
आ02	कहाँ
1	13-43
2	13-44
3	13-45
4	13-25
5	13-42
6	13-26
7	13-27
8	13-28
9	13-29
10	13-30
11	13-32
12	13-33
13	13-34
14	13-37
15	13-39
16	13-40
17	13-41
अ04	
आ01	कहाँ
1	10-11
2	10-12
3	10-13
4	10-14
5	10-15

6	10-1
7	10-2
8	10-4
9	10-5
10	10-6
11	10-7
12	10-8
13	10-9
14	10-10

अ04

आ02	कहाँ
1	14-2
2	14-3
3	14-6
4	14-9
5	14-10
6	14-11
7	14-12
8	14-13
9	14-14,15

अ05

आ01	कहाँ
1	15-1
2	15-2
3	15-3
4	15-4
5	15-5
6	15-6
7	15-7
8	15-8
9	15-9
10	15-10
11	15-11
12	15-12
13	15-13
14	15-14
15	15-15
16	15-16
17	15-17
18	15-18

अ05

आ02	कहाँ
1	16-1
2	16-2
3	16-3
4	16-4
5	16-5
6	16-6
7	16-7
8	16-8
9	16-9
10	16-11
11	16-12
12	16-10
13	16-13
14	16-4
15	16-15
16	16-16,17
17	16-17
18	16-18
19	16-20
20	16-21
21	3-15
22	3-15
23	16-22
24	16-23
25	16-24
26	16-25
27	16-26
28	16-27

अ06

आ01	कहाँ
1	1-1
2	1-2
3	1-3
4	1-4
5	1-5
6	1-6
7	1-7
8	1-8
9	1-9
10	1-10
11	1-11
12	1-12
13	1-13
14	1-14
15	1-17
16	1-18
17	1-20
18	1-21

अ06

आ02	कहाँ
1	1-23
2	1-24
3	1-25
4	1-26
5	1-26
6	1-27
7	1-28
8	1-29
9	1-30
10	1-31
11	1-32
12	1-33
13	1-34
14	1-35
15	1-36
16	1-38
17	1-39
18	1-40
19	1-41

अ07

आ01	कहाँ
1	6-1
2	6-2
3	6-3
4	6-4
5	6-5
6	6-6
7	6-7
8	6-8
9	6-9
10	6-10
11	6-11
12	6-12
13	6-14
14	6-13
15	6-15
16	6-16
17	6-17
18	6-18
19	6-19
20	6-20
21	6-21
22	6-21
23	6-25
24	6-22
25	6-26
26	6-28
27	6-29
28	6-30
29	6-31
30	6-32
31	6-33
32	6-34

अ07

आ02	कहाँ
1	7-1,2
2	7-3
3	7-4
4	7-5
5	7-6
6	7-7
7	7-9
8	7-10
9	7-11
10	7-12
11	7-13
12	7-14
13	7-15
14	7-16
15	7-17
16	7-18
17	7-19
18	7-20
19	7-21
20	7-22
21	7-23
22	7-24
23	7-25
24	7-26
25	7-27
26	7-28
27	7-29
28	7-30
29	2-33
30	2-34
31	2-35

अ08	कहाँ
1	17-1
2	17-2
3	17-3
4	17-5
5	17-6
6	17-7
7	17-8
8	17-9
9	17-10
10	17-11,12
11	17-13
12	17-14
13	17-15
14	18-21
15	17-16
16	17-17
17	17-18

अ09	कहाँ
1	3-1,2
2	3-3
3	3-1
4	3-4
5	3-5
6	3-6
7	3-7
8	3-8
9	3-9
10	3-10
11	3-11
12	3-12
13	18-1
14	18-2
15	18-3
16	18-5
17	18-6
18	18-7
19	18-9
20	18-11
21	18-12
22	18-13
23	18-14
24	18-15
25	18-16
26	18-18
27	18-19
28	18-20

अ010	कहाँ
1	8-1
2	8-2
3	8-3
4	8-4
5	8-5
6	8-6
7	8-7
8	8-8
9	8-9
10	8-10,11
11	8-11,10
12	4-1
13	4-2
14	4-3
15	4-4
16	4-5
17	4-7
18	4-8
19	18-10
20	1-23
21	2-3

-: समीक्षा :-

अधिगतमिदमच्छं पूर्वजातं सुपूर्ण
कणकणरणनाढ्यं सूत्रमेतत् क्रमाढ्यम्।
प्रतिपदनवकुञ्जं यामुनं तद् यथा स्यात्
तदिव विरचितं यत् तद्धि काणादमेतत्।।

क्रमत इह सुलक्ष्यं यन्नवीनं क्रमाढ्यं
प्रथितपदविलक्ष्यं भाष्यकारादिभिन्नम्।
क्वणिततरनिकाभिर्यत् प्रशस्तं पदाढ्यं
तदति रूचिरवाग्भिः क्रामतीवेदमेतत्।।

--डा० सुधाकराचार्यः त्रिपाठी
चौधरीचरणसिंहविश्वविद्यालये, मेरठनगरे (उ०प्र०)

कणाद-प्रणीत वैशेषिक-दर्शन का विभिन्न भारतीय दर्शनों में अन्यतम ही स्थान है। वैशेषिक दर्शन का अध्ययन अपरिहार्य है। पण्डित शिवानन्द शर्मा ने प्रस्तुत वैशेषिक दर्शन की मौलिक व्याख्या पाठकों के समक्ष प्रस्तावित की है। यह पुस्तक दर्शन के विधार्थियों के लिए अवश्य ही उपयोगी होगी तथा विद्वानों के बीच में विशिष्ट सराहना का विषय है, ऐसा मुझे विश्वास है।

--डा० आनन्द मिश्रा
धर्म तथा दर्शन विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी

''पदार्थधर्मसंग्रह'' भी वैशेषिक भाष्य नहीं है। इसलिये वैशेषिक दर्शन का ''वैशेषिक भाष्य'' लिखने की आवश्यकता है और अन्य दर्शनों की भी वर्तमान समाजोपयोगी हिन्दी में व्याख्या होनी चाहिए।

--उत्पलराज, पत्रकार

मेरा सपना ही साकार दिखायी देता है, क्योंकि संस्कृत एवं दर्शन के क्षेत्र में शिवानन्द शर्मा जी का परिश्रम एक महत्वपूर्ण योगदान सिद्ध होगा। अब विद्यार्थियों की भी इसमें रूचि बढ़ेगी। यद्यपि शब्दिक त्रुटियाँ भी है।

--डॉ विजेन्द्र सिंह तोमर
प्राचार्य, कृषक (पी. जी.) डिग्री कॉलिज मवाना, मेरठ

विभिन्न ग्रन्थों से उपेक्षित सूत्रों को संकलित करके स्वरूप निर्धारण करना दर्शन जगत में अपेक्षित रहा है। कणाद मत को इतना स्पष्ट करना वर्षों का परिश्रम है। ऐसे विद्वान को प्रोत्साहन देना भी अनिवार्य है।

--डॉ चिन्तामणि जोशी, प्राचार्य, विल्लेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ

कणाद का नाम सुना है, परन्तु उनके दर्शन की उपलब्धता कम है। हजारों साल बाद इस पुनर्व्यवस्था से ही पता चलता है कि कणाद का दर्शन भी अलग है, अन्यथा न्याय तथा मीमांसा का ही एक भाग दिखायी देता है।

--राजवीर शास्त्री, नवभारत विद्यापीठ इण्टर कॉलिज, मेरठ

जीवन में कुछ क्षण, व्यक्ति, पदार्थ एवं पुस्तकें इस दुःख भरे जीवन में अनायास खुशी एवं आनन्द दे जाते हैं। इन्हीं में से हैं एक शिवानन्द शर्मा एवं इनका लेखन। नारद जी की तरह आ जाना और आशा के इत्र से सुगन्धित करके चले जाना, फिर भी खोजने की आवश्यकता कभी नहीं पड़ती, क्योंकि सर्वत्र इनके आगमन का अहसास होता रहता है।

--डा० देवराज गिरी, जी.ए.एम.एस., रोहतक

कणाद का परिचय अधिक महत्वपूर्ण है और चर्चा का विषय भी है। ऐसे वैज्ञानिक, दार्शनिक, एवं बह्वृच दिव्य महर्षि का परिचय तो विद्यार्थियों को भी कोर्स में पढ़ाया जाना चाहिए।

--आर०एस० सहवा, पूर्व सेल्स टैक्स ऑफिसर, मेरठ

ऐसा लगता था कि दर्शनों का विषय ईश्वर ही है परन्तु आज लगता है कि यह आम आदमी का भी उपयोगी विषय है।

--डॉ निशा शर्मा, बाजपुर, (उत्तरांचल)

कुछ पौर्वात्य विद्वानों के द्वारा न्याय तथा वैशेषिक को मिलाकर विषय के साथ बहुत अन्याय किया है। परन्तु श्री शिवानन्द शर्मा ने यत्र तत्र उपेक्षित पड़े सूत्रों को वर्षों के अथक परिश्रम से पुनर्व्यवस्थित करने का स्तुत्य कार्य किया है। रचयिता की उद्भावनाऐं विद्वानों के दृष्टिकोण को परिवर्तित करेंगी। महर्षि कणाद को गार्ग्य कहा है, यह एक शोध का विषय है। फिर भी यह संकलन दर्शन-शास्त्र तथा विज्ञान के छात्रों, विद्वानों एवं वैज्ञानिकों के लिये भी प्रेरणास्पद होगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

--डा० गंगाप्रसाद शर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता, डी०एन०इण्टर कॉलिज, मेरठ

परमाणु तथा उत्पत्ति की ऐसी व्याख्या विज्ञान के शोधार्थियों के लिये अधिक उपयोगी है, परन्तु मृत्यु का प्रत्यक्ष होने का संकेत तो विद्वानों के लिये विचारणीय है।

--डा० कैलाश नारायण दूबे, देवसंस्कृतिविश्वविद्यालय, हरिद्वार

इसकी भी व्याख्या होनी चाहिये कि दर्शन वर्तमान समाज की दैनिक समस्याओं से कैसे सम्बन्धित है।

--डी.पी.सिंह, पूर्व प्रदेश अध्यक्ष, अ.भा. ग्राम प्रधान संगठन, उत्तर प्रदेश

शिक्षक और विद्यालयों को शास्त्र का समर्पण करने का अर्थ है एक नये उत्तरदायित्व का बोध कराना। ऐसे क्रान्तिकारी दर्शन को समझकर और समझाकर उत्तरदायित्व का निर्वाह अवश्य होगा, ऐसी अपेक्षा आशाजनक है।

--भागमल शर्मा, पूर्व चकबन्दी अधिकारी, विदुर कुटी, बिजनौर

विज्ञान भी एक दर्शन है परन्तु उपलब्ध वेद पुराण, कुरान आदि से आत्मा परमात्मा का कोई स्वरूप निर्धारित नहीं है परन्तु वैशेषिक दर्शन में जो स्वरूप बताया गया है वह विज्ञान की कसौटी से भी भौतिक सिद्ध कहा जा सकता है। इसलिये ज्ञान तथा विज्ञान दोनों को ही समझना विद्यार्थियों को आवश्यक है। लेखक का भी ऐसा ही संकेत स्पष्ट होता है। इसलिये यह वैशेषिक दर्शन आज की आवश्यक है।

--लालचन्द शर्मा, पूर्व प्राचार्य, गाजियाबाद

यह एक ऐसा नूतन विलक्षण अनुवाद है जिसमें वर्तमान परिस्थितियों की ओर ध्यानांकित करके वर्तमान समस्याओं का समावेश किया गया है परन्तु प्रकारान्तर से धार्मिक मतभेद भी हो सकते हैं।

—डा0 अवनीश कुमार श्रीवास्तव, नालन्दा कॉलिज, बिहार

जगत तो सर्वत्र दिखायी देता है अथवा विज्ञान भी दिखा देता है परन्तु आत्मा परमात्मा का दिखायी देना एक पुरातन पहेली है। इनके प्रत्यक्ष की बात करना भी अद्‌भुत खोज है जिसको वैशेषिक भाष्य से स्पष्ट किया जा सकता है यदि ऐसा है तो वास्तव में वैशेषिक दर्शन मानक समाज के लिये महत्वपूर्ण है।

—नानकचन्द शर्मा, भूतपूर्व प्रधान, हापुड़ (गाजियाबाद)

यह एक ऐसी अमूल्य रचना है, जिसकी शिक्षक एवं विद्यार्थी समाज को आवश्यकता थी।

—डॉ0 त्रिवेणी दत्त शर्मा, प्रधानाचर्य, डी.एन. डिग्री कॉलिज, मेरठ

वेद पुराण, कुरान आदि को ईश्वर की रचना न मानना तो ईश्वर को ही नकारना है तो क्या वैशेषिक दर्शन नास्तिक है।

—ज़रीफ हुसैन, एडवोकेट, देहरादून

वैशेषिक दर्शन का ज्ञान वर्तमान विद्यार्थियों को न होने का कारण संस्कृत भाषा ज्ञान का अभाव है। अतः संस्कृत भाषा का ज्ञान विज्ञान के विद्यार्थियों के लिये आवश्यक है।

—डा0 दीनानाथ सिंह, आचार्य, मेरठ कॉलिज, मेरठ।

यद्यपि यह लघु संस्करण विद्वानों के लिये तो उपयोगी है तथा दर्शन के क्षेत्र में एक क्रान्ति है परन्तु सरल हिन्दी नहीं है और आम आदमी के लिये सरल एवं प्रचलित हिन्दी आवश्यक है।

—श्रीमती इन्दू शर्मा, आचार्या,
सुशीला देवी कन्या इन्टर कॉलिज, परतापुर, मेरठ

उपस्कार के अतिरिक्त वैशेषिक शास्त्र के रूप में अन्य सूत्र संकलन प्रचलित नहीं हैं। यदि उनके समस्त सूत्रों का समायोजन इस पुनर्व्यवस्थित शास्त्र में किया गया है, तो उनका विवरण भी पाठक को मिलना चाहिये।

—डा0 सुधीर कुमार अग्रवाल, माँ आनन्दमयी आश्रम, कनखल, हरिद्वार

प्राचीन इतिहास में आयुर्वेद के लिये वैशेषिक शास्त्र का अपूर्व योगदान स्पष्ट दिखायी पड़ता है क्योंकि विज्ञान की समस्त विधाओं के विद्यार्थियों के लिये कणाद प्रातःस्मरणीय हैं।

—डॉ0 दयानन्द शर्मा, प्राचार्य, राजकीय आयुर्वेदिक कॉलिज,
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

वैशेषिक शास्त्र संस्कृत भाषा के साहित्य की एक प्राचीन महत्वपूर्ण धरोहर है। अनुलब्धता के कारण ही संस्कृत के विद्वान लगभग वंचित ही रहे हैं। यह संकलन संस्कृत के इतिहास वैशेषिक शास्त्र को उचित स्थान दिलायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

—डॉ0 महावीर प्रसाद अग्रवाल,
आचार्य, संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

जिस प्रकार कृष्ण कन्हैया के मुख में माता यशोदा को समस्त ब्रह्माण्ड दिखायी दिये थे, उसी प्रकार वैशेषिक शास्त्र में विश्व के समस्त दर्शन दिखायी दे जाते हैं। वैशेषिक दर्शन विश्व के समस्त वेदों की कुंजी है अथवा शब्द कोष है अथवा निरुक्त है। राज, समाज, ज्ञान, विज्ञान आदि के सर्वकालिक स्वरूप का दर्पण है। विद्वानों, वैज्ञानिकों, धर्म जिज्ञासुओं तथा सर्व साधारण के लिये परम उपयोगी है क्योंकि समस्त भौतिक, आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त कराता है। अतः इसका पढ़ना तथा पढ़ाना परम पुण्यदायक है।

--पण्डित शिवानन्द शर्मा